वर्ष १०, अंक ३

श्रीकृष्णाय नमः

पौष १९९२

दिगम्बर

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—

ब्र० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश		६१
२.	योग-साधन [ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती		६२
३.	श्री राम चरित मानस में भक्तिवाद [ले० श्रीयुत् पुरुषोत्तमलाल त्रिपाठी		६६
४.	ब्रजांगना विलाप [रचयिता श्री रामसेवकसिंह 'श्याम' पटना		६८
५.	शिक्षा प्रद वाक्य		६६
६.	सच्चा सुख [ले० श्री शान्ति मंडल डाबनी नीमच से प्राप्त		७०
७.	भगवान श्रीराम में रावणसेंद रावण का मार्मिक भाव [ले० श्री महावीर प्रसाद बजरंगबली श्रीवास्तव		७३
८.	प्रेम सरोवर [रचयिता श्री कन्हैयालाल जी पोद्दार		७८
९.	खान पान [ले०-श्री यमुनाप्रशाद श्रीवास्तव नरसिंहपुर		८०
१०.	प्रोत्साहन [ले०-प्रभुदत्त ब्रह्मचारी आश्रम, ...		८५
११	कर्त्तव्य का ज्ञान [रचयिता प्रभुदत्त ब्रह्मचारी आश्रम, ...		८६
१२.	संकल्प-बल		८८
१३.	शान्त [रचयित्री श्रीमती ब्रजकुमारी 'प्रभाकर' आश्रम, ...		९१
१४.	भजन		९१

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) वा इससे अधिक देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२१)
डा० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्म सिंह माचजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१२०)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१)
बाई चदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ० बी० ई रामपुरा	५१)
चौधरी शिवसहाय जी कोसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	५१)
डाक्टर झवेरभाई नारायणभाई देसाई महुधा जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला	२५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	२५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	१५)
सूबेदार मेजर रूपचन्द जी	५)
रंगलसिंह गनर नं० ५ तोपखाना अम्बाला	५

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जागृत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष १० | श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, पौष ता० १ दिसम्बर, १९३५ | अंक ३ पूर्ण संख्या १११

वेदोपदेश

याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम्।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥

जिन उपायों द्वारा महान् अतिथि-वत्सल और असुरों के डरसे जलमें बैठे हुए दिवोदासको, शम्बर असुर के हनन-कालमें, बचाया था तथा जिन उपायों द्वारा नगर-विनाश-रूप समर में पुरुकुत्स-पुत्र त्रसदस्यु ऋषिकी रक्षा की थी, अश्विद्वय, उनके साथ आओ।

याभिर्वम्रं विषिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः।
याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥

जिन उपायों द्वारा पानरत और स्तुति-पात्र विषनः-पुत्र वम्रकी रक्षा की, स्त्री पा जानेपर कलि नामके ऋषिकी रक्षा की थी और जिन उपायों द्वारा अश्व-शून्य पृथि नामके पैन राजर्षिकी रक्षा की थी, अश्विद्वय, उनके साथ आओ।

योग साधन

[ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती]

११२०. भक्ति और परमात्मा के साथ एकत्व होजाने पर भक्त को वह समस्त शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं जो कि जन्म, ओषधि, तप और मंत्र से प्राप्त होती हैं।

११२१. चित्तका संयम समस्त गुणों से उत्तम गुण है। इसलिये इस गुण को सन्तोष और धैर्य से विकसित करना चाहिए। इस गुण की वृद्धि पर अन्य गुण स्वयं ही उपलब्धहो जाते हैं।

११२२. भगवन् ! जब आप कहते हैं कि ब्रह्मका कोई रूप ही नहीं है फिर ब्रह्माकार वृत्ति से क्या प्रयोजन है ? तात मेरा अभिप्राय यह है कि ब्रह्म का वह आकार नहीं है जो आकार माया के पदार्थों का है। सत्-चित्-आनन्द स्वयं उसका रूप है। सत्यं, ज्ञानं, अनन्तं उसके रूप हैं।

११२३. अनन्त, निराकार, निर्गुण, निर्विशेष और अरूप उसके निर्विशेष गुण हैं। सच्चिदानन्द, सत्य, शान्त, और ज्ञान उसके सविशेष गुण हैं।

११२४. क्षणिक विज्ञानवादी कहते हैं कि 'केवल विज्ञान ही है, संसार तो केवल खयालमात्र है। यह सब जो दृष्टि गोचर होरहा है एक मात्र अपने खयाल का ही रूप है"। शून्यवादी दृश्य जगत और विज्ञान दोनों से इनकार करते हैं।

११२५. भगवन मुक्ति क्या है ? जहां हानि और लाभ दोनों न हों उसी पदका नाम मुक्ति है। जो हर्ष और शोक से रहित है वही मुक्ति का पद है।

११२६ शंकराचार्य कहते हैं। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि यह सब कुछ दृष्टि गोचर होरहा है परन्तु यह केवल रूप मात्र है। यह सापेक्षता से दिखाई देरहा है। इसका स्वतन्त्र कुछ आधार नहीं है। यह केवल आभास मात्र है जैसे सांप का खयाल रज्जु में, अंगुठी का सोने में इसी प्रकार यह संसार, यह शरीर, यह मन, यह प्राण यह इन्द्रियां ब्रह्म का रूप हैं। विवर्तवाद शंकरवाद कहलाता है।

११२७. संसार परिणाम नित्य है और ब्रह्म कूटस्थ नित्य है। ब्रह्म सत है, ब्रह्म ज्ञान है, ब्रह्म ही संसार, शरीर और मनका आदि कारण है। ब्रह्म का प्रत्यक्ष ज्ञान होने से समस्त पदार्थों का ज्ञान होजाता है। "ब्रह्म विद्यां सर्व विद्या प्रतिष्ठम्" श्रुति की घोषणा है कि "आरम्भ में केवल एक सत था" एकं सत्यं विप्रा बहुधा वदन्ति, एक ही सत्य का ऋषि लोग भिन्न २ भान्ति से प्रतिपादन करते हैं।

१२२८. संसार सत्य है और ब्रह्म सत्य का भी सत्य है। संसार व्यवहारिक सत्य है और ब्रह्म परमार्थिक सत्य है। पशु प्रतिभासिक सत्य है।

१२२९. यह संसार अत्यन्त मिथ्या नहीं है। निस्सन्देह यह संसार मिथ्या है परन्तु किन अर्थों में मिथ्या है ? क्या यह शशे के सींग, बन्ध्या स्त्री का

पुत्र और आकाश में कुसुमवत मिथ्या है ? नहीं ऐसा नहीं है परन्तु ब्रह्म-तत्त्व की भान्ति यह सत्य नहीं है। ब्रह्मकी अपेक्षा यह असत्य है। यह केवल रूप मात्र है। यह मिथ्या है। प्रिय चन्द्र ! क्या तुमने मेरे आशय को स्पष्ट रीति से समझलिया है। मिथ्या शब्द के अर्थ भविष्य समझने में भूल मत करो। मिथ्या शब्द के अर्थों से हिन्दुजाति की बड़ी भारी हानि हुई है। इस मिथ्या शब्द के उलटे अर्थ समझने से भारत के सन्यासियों और जनसाधारण में अकर्मण्यता और अन्धकार ने घर करलिया है।

११३०. यदि तुम संसार को सत्य भी समझते हो तबभी तुम अपने भावों को शंकर केवल अद्वैत के रंग में रंग सकते हो। तुमको इस से डिगने की एक इन्च भी आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार उष्णता और प्रकाश अग्नि में द्वैत नहीं स्थापित कर सकते इसी प्रकार यह संसार ब्रह्म में द्वैत नहीं स्थापन कर सकता। रूप का तत्त्व पर क्या प्रभाव पड़ सकता है।

११३१. जिस ब्रह्म से संसार बना है वह संसार ब्रह्म को किस तरह विकारी बना सकता है। विकारी परिवर्तन शील को कहते हैं परन्तु ब्रह्म का संसार में परिवर्तन होना रसायनिक परिवर्तन नहीं है। ब्रह्म ने इस जगत को उत्पन्न भी कर दिया और उसपर किसी प्रकार का प्रभाव भी नहीं पड़ा। एक ही ब्रह्म अनेक रूप धारण कर सकता है और भिन्न २ भी दिखाई दे सकता है परन्तु उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हो सकता। ब्रह्म स्वयं ही पत्थर, वृक्ष या सितारे की शकल में दिखाई देता है। उसको इन रूपों को धारण करने के लिए किसी यत्न की आवश्यकता नहीं है। वह चेतन्य स्वरूप, ज्योति स्वरूप और ज्ञान स्वरूप है केवल इच्छामात्र से वह अनन्त ब्रह्माण्डों को उत्पन्न कर सकता है जिस प्रकार बीज का स्वभाव उगने का है उसी प्रकार ब्रह्म इस संसार को उत्पन्न करता है। कार्य कारण के सदृश्य ही होता है। जगत की क्या आवश्यकता थी यह किस तरह उत्पन्न हुआ ? सच्चिदानन्द ब्रह्म के गुणों के साथ जड़ और असत् अविद्या का किस तरह मेल हुआ इत्यादि प्रश्नों का उत्तर साधारण बुद्धि द्वारा नहीं मिल सकता। इसके लिए ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता है तब ही इन अति प्रश्नों का उत्तर मिल सकता है।

११३२. श्री रामानुज का सविशेष ब्रह्म काम करता है। वह दयालु है, करुणा सागर है। वह सज्जन पुरुषों को अच्छे कर्मों का पुरुस्कार देता है। परन्तु श्री शंकराचार्य का निर्विशेष ब्रह्म बिलकुल उदासीन है। अदृश्य होना सर्व श्रेष्ठ गुण है।

११३३. श्री रामनुजाचार्य के सविशेष ब्रह्म के कल्याण करने वाले गुण श्री शंकराचार्य के निर्विशेष ब्रह्म के अनन्त गुणों के अंशमात्र हैं। निर्गुण से यह अभिप्राय नहीं है कि शुद्ध ब्रह्म गुणों से सर्वथा रहित है। इसका यह मतलब है कि निर्गुण ब्रह्म भण्डार रूप है और रामानुज जी का सविशेष ब्रह्म इस भण्डार से सर्व कल्याण गुणों को प्राप्त करता है। रामनुजाचार्य के कुछ शिष्य अज्ञान और द्वेष के कारण कहा करते हैं कि शंकराचार्य जी का ब्रह्म पत्थरों का ढेर और शून्य है। वह शुष्क है। निर्गुण ब्रह्म में कुछ भी रस नहीं है। यह कथन केवल अज्ञान मात्र है। वह तो रस और आनन्द से परिपूर्ण है। वह सर्वज्ञ नहीं है वह स्वयं ज्ञान स्वरूप है। वह सुन्दर नहीं है वरन स्वयं सुन्दरता है। वह समस्त गुणों का समूह है।

११३४. द्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत इत्यादि सब अवस्थाएं हैं। उच्चावस्था केवल अद्वैत है। श्री रामानुज को धन्य हो श्री शंकराचार्य को धन्य हो।

११३५. ब्रह्म से अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। यह संसार इसी प्रकार असत्य है जिस प्रकार रेती में जलके प्रमाणुओं का दृश्य. ब्रह्म संसार से भिन्न है। जिन्होंने ब्रह्म को जान लिया है वह जन्म और मृत्यु उल्लंघन कर चुके हैं। जो जन्म, मरण के चक्र में फंसे हुए हैं वह संसार चक्र में बन्धे हैं। ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही होजाता है। ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति। आत्मा को जानने वाले शोक को तर जाते हैं।

११३६. जिज्ञासु को चाहिए कि चित्त को प्रसन्न करने के लिए व्यर्थ की बातें न बनावे। जिज्ञासु को सदैव गम्भीर रहना चाहिए। उसको सदैव ब्रह्मवार्ता में रत रहना चाहिए।

११३७. व्यर्थ बतालाप के स्वभाव को त्यागना चाहिए और विचार पूर्वक बातें करनी चाहिएं। बोलने से पहले विचार करो ऐसी वाणी कभी मत बोलो जिससे किसी का चित्त दुख जावे। जब जन समूह में जाओ तो अपने विचारों का भली भान्ति निरीक्षण करलो। भावुक शब्दों से बचो। शान्त, पवित्र और संयमी बनो। गम्भीर और प्रभावशाली स्वभाव को प्रगट करने का स्वभाव डालो।

११३८. प्राचीन काल में हिन्दु स्त्रियां भी संन्यास धारण करती थीं। वे यज्ञोपवीत भी पहनती थीं, वह ब्रह्म विचार और निदिध्यासन में व्यस्त रहना थीं।

११३९. यह कहावत "स्त्रियों के चित्रों को भी नहीं देखना चाहिए" केवल कामी पुरुषों के लिए है जो अपने चित्त का संयम नहीं कर सकते। याज्ञवल्क्य ने अपनी स्त्री मैत्रेयी को ब्रह्मज्ञान की शिक्षा दी। रैक्व ऋषि की सेवा में जानश्रुति राजा की लड़की थी, वह ऋषि नैष्ठिक-ब्रह्मचारी था।

११४०. यदि स्त्री के दर्शन करना ही अनुचित होता तो ऋषि मुनि स्त्रियों को ज्ञान किस प्रकार दे सकते थे? और उनको किस प्रकार निरन्तर अपनी सेवा में रख सकते थे।

११४२. प्राचीन काल में स्त्रियां भी ब्रह्मचारिणी रहती थीं, वे ऋषियों की सेवा करती थीं, आत्मा का विचार करती थीं और ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करती थीं।

११४३ संचित कर्म वे हैं जो जन्म जन्मान्तर में किए हैं, प्रारब्ध वे हैं जो पिछले जन्म में किए गए हैं और क्रियमाण या अगामी कर्म वे हैं जो वर्तमान में किए जारहे हैं। संचित ब्रह्मज्ञान से नष्ट होते हैं, प्रारब्ध भोग से नाश होते हैं। क्रियमाण कर्म ज्ञानी पर लागू नहीं होते कारण ज्ञानी अकर्ता और साक्षी भाव में स्थित रहता है।

११४४. तरकश जिसमें बाण रहते हैं हमारे संचित कर्मों को प्रगट करता है। बाण जो कि धनुष से छूटने वाला है हमारे आगामी कर्मों को प्रगट करता है और प्रारब्ध कर्म उस तीर की भान्ति हैं जो धनुष से छूट चुका है और अपना काम किए बिना नहीं ठैर सकता।

११४५. संचित कर्म कोषके तुल्य हैं। जो पदार्थ बिक्री के लिए दुकान में रक्खे हैं वह प्रारब्ध कर्म हैं और जिस की बिक्री आगामी कर्म हैं।

११४६. जो सबका द्रष्टा है परन्तु जिसको कोई नहीं देख सकता, जो बुद्धि का भी प्रकाशक है वह आत्मा है। वह ही ब्रह्म है।

११४७. शौनक ने जो कि बड़ा गृहस्थी था अंगिराऋषि से प्रश्न किया ? भगवन् ! वह क्या विद्या है जिसके जानने से यह सब कुछ जाना जाता है। उसने उत्तर दिया परा विद्या द्वारा अविनाशी ब्रह्म जाना जाता है ।

११४८. ब्रह्म ज्ञान के प्राप्त होने पर अश्रुत श्रुत होजाता है, अदृष्ट, दृष्ट होजाता है, बिना विचारा हुआ विचारा होजाता है और अज्ञात, ज्ञात हो जाता है।

११४९. हीरे में छेद करना मस्त हाथी को कच्चे धागे से बांधना, सूर्य को पकड़ कर हाथ में लेना और अग्नि से खेलना आसान है परन्तु मन को वश करना कठिन है।

११५०. चाहे मनुष्य पट शास्त्री हो, चाहे आक्स फोर्ड व हार्वर्ड यूनीवर्स्टी का एम० ए० या पी० एच डी, या डी. एस सी व एल. एल. डी हो, बिना ब्रह्म ज्ञान के उनकी बुद्धि पाशविक और शून्य है।

११५१ चाहे मनुष्य उपनिषद् ब्रह्म सूत्र, गीता, षट, दर्शन, और स्मृतियों का ज्ञाता हो, चाहे पश्चात्य दर्शन शास्त्र का पण्डित हो बिना आत्म साक्षात्कार उसकी मुक्ति सम्भव नहीं है और आत्म साक्षात्कार निरन्तर ध्यान और साधन के बिना असम्भव है चाहे मनुष्य करोड़ों वर्षों तक जन्म धारण करता रहे।

११५२. यह शरीर माया की गृन्थी स्त्री है, पुत्र तीसरी ग्रन्थी है, पुत्री चौथी ग्रन्थी है, पौत्र पांचवी ग्रन्थी है। जिसने इन ग्रन्थियों को काट डाला है और जिसको मोह नहीं है निस्सन्देह धीर पुरुष है, वह आदमी शक्तिशाली नहीं है जो मोटर खेंच सकता है, अपनी छाती पर पत्थर फोड़ सकता है, मैजिस्ट्रेट, या कौंसिल का मेम्बर या पार्लमेण्ट का मेम्बर शक्तिशाली नहीं है।

११५३ चित्त-शुद्धि मनकी शुद्धि है, नाड़ी शुद्धि स्थूल शरीर की नाड़ियों की शुद्धि है। भूत-शुद्धि पंच भूतों की शुद्धि है। आधार शुद्धि आधार की शुद्धि का नाम है। शुद्धि होने पर सिद्धि आप ही प्राप्त हो जाती हैं, शुद्धि के बिना सिद्धि असम्भव है।

११५४. कुण्डलनी योग, कुण्डलनी योग को सिखाता है। यह योग षट चक्र में कुण्डलनी का प्रवेश कराके सहस्त्रसार चक्र में शिवके साथ इसका मेल करा देता है। यह निश्चयात्मिक ज्ञान है। इसको लय-योग भी कहते हैं। जब कुण्डलनी शक्ति ऊपर को चढ़ती है तो षट चक्रों को भेदन कर देती है। कुण्डलनी का अर्थ है चक्रदार। उसका रूप कुण्डली लगाए सापों के तुल्य होता है। इसीलिए इसको कुण्डलनी कहते हैं।

११५५. जो मनुष्य इच्छाओं को नहीं छोड़ सकता और अहंकार का त्याग नहीं कर सकता वह प्रसन्न चित्त नहीं रह सकता। आत्म साक्षात करने पर मनुष्य सदैव प्रसन्न चित्त रह सकता है।

११५६. जो सुनने में नहीं आता परन्तु जो सबकी सुनता है, जो दृष्टि से अगोचर है परन्तु सबका द्रष्टा है, जो विचार का विषय नहीं परन्तु जिसके ज्ञान में सब कुछ है, जो अज्ञात है परन्तु स्वयं सर्वज्ञ है वही ब्रह्म है।

११५७ वह अजन्मा, अविनाशी, अमर, अजर ब्रह्म है। जिससे यह जगत उत्पन्न हुआ है, जिसमें यह जगत समाया हुआ है, और जिसमें यह

जगत अन्त में लीन हो जावेगा वह सब ब्रह्म है।

११५८. जिसमें दिशाएं नहीं हैं, न प्रकाश है और न अन्धकार, न सुख है दुःख न भूख न प्यास, न हर्ष न शोक, न लाभ न हानि यह ब्रह्म है।

११५९ कुण्डलनी जाग्रत होजाती है तो वह एक दम सहस्रसार में प्रविष्ट नहीं हो जाती। वह एक चक्र से दूसरे चक्र में प्रविष्ट होती जाती है। कुण्डलनी के सहस्रसार में प्रविष्ट होजाने पर भी योगी जीवित रहता है।

११६०. कुण्डलनी के सहस्रसार में प्रविष्ट होने पर भी वह फिर मूलाधार में वापिस आकर गिर जाती है। जब योगी समाधि में निमग्न होजाता है, जब उसको कैवल्य की प्राप्ति होजाती है। कुण्डलनी उस समय नीचे को नहीं गिर सकती।

११६१. कुण्डलनी के सहस्रसार में प्रविष्ट होने पर योगी अनेक शरीरों के प्रारब्ध का शीघ्र क्षय कर सकता है।

श्री राम चरित मानस में भक्तिवाद

[लेखक—श्रीयुत पुरुषोत्तमलाल त्रिपाठी]

श्री इष्टदेव वंदन करैं, मूर्तिमान विश्वास।
भक्ति शिरोमणि है यही, कविवर तुलसीदास॥

यों तो तुलसीदास जी श्री रामचंद्रजी के अनन्य भक्त थे ही, भक्त ही नहीं भक्ति भाव के मर्मज्ञ एवं सांप्रदायक गूढ तत्व के ज्ञाता भी थे। उन्होंने श्रीराम चरित्र मानस में भक्त और भक्ति का उल्लेख शास्त्रानुसार सूत्र रूप-चौपाइयों में प्रकाशित किया है। और पात्रों द्वारा उस विषय को उचित एवं सुन्दर ढंग से प्रतिपादित किया है। जैसे वैष्णव विचार विचार के सांथ विशिष्ट कर्म काण्डी भक्त-शान्तिभक्त अनन्यभक्त सुबोद्धभक्त, ज्ञानीभक्त, सहज शील भक्त, त्यागीभक्त, योगीभक्त, और निष्काम कर्म भक्तों, का प्रतिपादन किया हैं। जो कि भक्ति के प्रेमी, पाठकों के अवलोकनार्थ प्रेशित कर प्रसन्नता पूर्वक निवेदन है कि इस विषय पर अवश्य प्रकाश डालेंगे, रामजी के पूजने पर आदि कवि कहते हैं।

"तिनके श्रवण समुद्र समाना,
कथा तुम्हारी सभग सरि नाना।
भरहिं निरंतर होय न पूरे,
तिनके हिये सहज तव चूरे॥
लोचन चातक जिन करि राखे,
रहहिं दरस जल धर अभिलाखे।
निदरहिं सिंधु सरित सरवारी,
रूप बिन्दु जहि होई सुखारी॥
तिनके हृदय सहज सुखदायक,
बसहु सखण सिय सह रघुनायक॥
दोहा—यश तुम्हार मानसविमल, हंसनि जिह्वा साजु।
मुक्ता हल गुण गणचुगहीं, बसहुं राम हियतासु॥

अब वैष्णव विचार पर तुलसीदास जी का सिद्धांत जोकि भगवतभक्त भक्ति सहित उसपर आरूढ़ रहकर उसका पालन करते हुये, संसार में प्रचार करें।

उसका क्या मनोहर चित्र खींचा है, उसे भगवत भक्त ध्यान से श्रवण मनन करे।

"प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुवासा,
सादर जासु लहै नित नासा॥
प्रभुनिवेदित भोजन करही,
अरु प्रभु प्रसाद पट भूषण धरही।
शीश नवहि सुरगुरु द्विज देखी,
प्रीति सहित करि विनय विशेखी॥

यहां तक तो सब सांप्रदाय 'श्री ब्रह्म रुद्र सनकादि, याते द्वैत विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, आदि किसी का भी मत भेद नहीं पर स्वामी जी का उच्च विचार हृदय में आया कि हमारे राम तो इस प्रभु शब्द द्वारा शायद न समझे अथवा हमारी अनन्यता पर आज कलके मन चले व्यक्ति टिप्पणी करें तो झूठ्ठो आपने ये शिल शिला कार्य में लिया कि:-

कर नित करही राम पद पूजा,
राम भरोस हृदय नहीं दूजा।
चरण राम तीरथ चल जाहीं,
राम बसहु तिनके मन माही॥

तदनंतर "विशिष्ठ कर्म कांडी भक्त भक्ती का विषय यथा:-

तर्पण होम करहि विधि नाना,
विप्र जिवांई देहि बहु दाना।
तुमते अधिक गुरुहि जिय जानी,
सकल भाव से यही सनमानी॥

और भी:-

सबकर मांगहि एकफल, राम चरण रति होय।

अर्थात् तर्पण, होम, वृतादि, शुभ कर्मानुष्ठान का फल सिर्फ यही चाहिते हैं कि हमारी प्रीति भगवतचरणार्विन्द में होय यही श्रेष्ट कर्मयोगी भगवत भक्त है अनंतर 'शान्त भक्त'।

"काम क्रोध मद मान न मोहा,
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।
जिनके कपट दंभ नहिं माया,
तिनके हृदय बसहु रघुराया॥

और भी अनन्य भक्त कहते हैं:-

"सबके प्रिय सबके हितकारी,
दुःख सुख सरिस प्रशंसागारी।
कहहि सत्य प्रिय वचन विचारी,
जागत सोवत। सरन तुम्हारी॥
तुमहि छणि गति दूसर नाही,
राम बसहुं तिनके मन माहीं॥

यहां पर अनन्यताकी श्रेष्टताप्रति मोहित की है अब 'सुबोध भक्त' कहते हैं:-

'जननी सम जानहिं परनारी, धनपराव विषसें विषनारी।
जेहरपहि पर संग्रह देखी, दुखित होय रवि मति विशेखी॥
जिनहि राम तुम प्राण पियारे, तिनके मन सुभ सदन तुम्हारे।

'ज्ञानी भक्त' भी कहते हैं:-

स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिनके सब तुम तात।
तिनके मन मन्दिर बसहुं, सीय सहित दोउ भ्रात॥

'सहन शील भक्त' कहते हैं:-

अवगुण तज सबके गुण गहही,
विप धेनु हित संकट सहही।
नीति निपुण जिनकी जगनी का,
धर तुम्हार तिनके मन नीका॥

'भगवत् अवलंबित भक्त' कहते हैं-

'गण तुम्हार सबहिं निरदोष,

जिहि सब भांति तुम्हार भरोषू।
राम भक्ति प्रिय लागही जेही,
तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥

'त्यागी भक्त' कहते हैं–

'जाति पांति धन धर्म बड़ाई,
प्रिय परिवार सदन समुदाई॥
सब तजि तुम्हीं रहै लवलाई,
ताके हृदय बसहु रघुराई॥

इससे बढ़कर और क्या त्याग है। 'योगी भक्त' कहते हैं–

स्वर्ग नर्क अपवर्ग समाना, जहं तहं देख धरे धनुबाना।
मनक्रम बचन जोरा उर चेरा, राम करहु ताके मनडेरा॥

'निष्काम कर्मा भक्त' कहते हैं–

जाहि न चाहिये कबहुं कुछ, तुमसन सहज सनेह।
बसहुं निरंतर तासु उर, सोराउरनिजगेह॥

'भक्तो की भक्ति' किसको कहते हैं! इस प्रश्न का उतर तो श्री मरियादा भगवान श्री रामचन्द्र जी ने ही सारभूत शब्दों में दिया है।

जननी जनक बंधु सुत दारा, तनु धन भवन सुहृद परिवारा।
सबकी ममता ताग बटोरी, मम पद मनहिं बांध बरडोरी।

माता, पिता भाई, पुत्र, कलत्र, सरीर, धन, घर, मित्र, और कुटुंब, आदि में प्रत्येक व्यक्ति मनुष्य के प्रेम के सूक्ष्मतन्तु लगे हुये ही हैं। इन प्रेमरूपी सूक्ष्मतागों को बटोरकर और सबको मिलाकर एक मोटी रस्सी बनालो और उस बटी हुई रस्सी को लेकर हमारे 'प्रभु' के चरणों को बांधो और दूसरा छोर अपने अन्तः करण में रखो इसी का नाम भक्ति है।

इसलिये संसार सागर से पार होने के लिये सभी को भक्ति की आवश्यकता है। भक्ति के बिना वैदिक कर्म कांड भी बन्धन का हेतु होजाता है। मानो भक्ति को छोड़कर जो विज्ञानी बनते हैं। वे अपने आत्म विज्ञान से उन्नति अवश्य कर जाते हैं किन्तु उन्नति करके भी फिर औंधे मुह इसी संसार में गिर जाते हैं। सच है जबतो तुलसी दास जी ने कहा है।

तीन टूक कौपीन के, भोगाजो बिनलोन।
तुलसी रघुबर उरबसैं, तो इन्द्र बापुरो कोन॥

• ब्रजाँगना विलाप •

(रचयिता श्री रामसेवकसिंह "श्याम" पटना)

श्याम कहाँ हो क्या न आओगे, सुना कालिन्दी के कूल।
वंशीवट वियोग ज्वाला में, झुलस रही गये क्या भूल॥
कलिका मौल रही है सूखा, हा सुरम्य वह नीप रसाल।
विलप रही वियोग ज्वाला अब, क्यों न आये नटवर गोपाल॥
विश्लेष त्यागि तृण गौवें, बरसाती नयनो से नीर।
अनुतप्त रोती बालाये, तब वियोग ज्वाला यदुबीर॥
नहीं सुनती है मुरली की, अब स्व मधुर सुरलि तान।
वृन्दावन गोकुल की गलियां, हाय दिखती हैं सुनसान॥
करुण क्वनित सारिका करती, जिसे किया था तूने प्यार।
अशान्ति उद्विग्न राधिका, कहाँ छिपे प्रियतम सुकुमार॥
बड़ी वेदना की ज्वाला में, आह तड़पती होकर दीन।
दर्शन क्या न दोगे प्रियतम, देख आज दासी को दीन॥

शिक्षा प्रद वाक्य

कोई भी मरण के वश हुआ प्राणी स्वयं अपनी शक्ति से कोई भी काम नहीं करता है। जैसे अच्छे मनुष्यों को ईश्वर प्रेरणा करता है ऐसे ही खोटे मनुष्यों को भी ईश्वर प्रेरणा करता है, उसके अनुसार ही पुरुष काम करता है, फिर उसमें शोक काहेका।

धर्म-वेत्ता कहते हैं कि बोलने वालों से न बोलना अच्छा है, और न बोलने से सत्य बोलना अच्छा है और धर्ममय प्रिय भाषण किया जाय तो सर्वोत्तम है।

किसी से मर्मान्तक बातें न कहनी चाहिएं, क्रूर भाषण न करना चाहिए, नीच के पास से शास्त्र का रहस्य न सुनना चाहिए, तथा जिस बातके कहने से दूसरे को उद्वेग हो ऐसी अकल्याण मयी और नरक लोक को देने वाली वाणी न बोलनी चाहिए।

मुख में से वाणी रूप बाण निकलते ही उनके प्रहार से मनुष्य रात दिन शोक किया करता है, दूसरे मनुष्यों के मर्म स्थानों को चीरने वाले वाग्बाणों का पण्डितों को प्रयोग नहीं करना चाहिए।

प्रतिपक्षी मनुष्य कुवाक्य रूपी बाण मारकर भली प्रकार बींध डाले तब भी धीर पुरुष को शान्त रहना चाहिए, ऐसा धीर पुरुष शत्रु के पुण्य को हर लेता है।

स्पर्धा करने वाला पुरुष दूसरे मनुष्य के अवगुणों का जिस प्रकार बखान करना चाहता है, तैसे उसके अच्छे गुणों को कहना नहीं चाहता।

मनको वशमें रखने वाला पुरुष ब्रह्माण्ड मंडल के स्तम्भ की समान सबका पूजनीय होजाता है। और सब मनुष्य जिसको मधुर वाणी से बुलाते हैं वह पुरुष देवताओं का साथी होजाता है।

जिस पुरुष की वाणी और मन वशमें रहते हैं और जो परम का चिन्तवन करता है उसको वेदाध्यन का, तपका और त्याग का, इस प्रकार सब धर्म कर्म का फल मिल जाता है।

मूर्ख मनुष्य निन्दा करे अथवा अपमान करे तो भी उस मूर्ख को मूर्ख कहकर उसके अवगुण न कहे, और किसी की प्रशंसा न करे तथा समान के साथ वाद विवाद करके अपने आत्मा की निर्मलता का नाश न करे।

पण्डित पुरुष अपमान से अमृत की समान सन्तुष्ट रहे क्योंकि अपमान पाने वाला पुरुष सुख से सोता है और अपमान करने वाला पुरुष नष्ट हो जाता है।

जो जिसके साथ रहता है वैसा होजाता है, जो जिसका सत्कार करता है वह वैसा होजाता है और जिसकी जैसी भावना होती है वह भी वैसा ही होजाता है।

कपड़े जैसे रंग से रंगे जाते हैं वह वैसे ही वर्ण के होजाते हैं। ऐसे ही जो पुरुष सन्त असन्त तपस्वी अथवा चोर का संग करता है वैसा ही हो जाता है।

दम, क्षमा, धैर्य, तेज, पराक्रम, संन्तोष, सत्यवादीपन और चतुरता यह सब पुण्य और पाप इन दोनों का नाश करके सुख देते हैं।

मनुष्य दूसरे मनुष्य के जिस कर्म को देखकर उसकी निन्दा करता है, उस कर्म को मनुष्य को स्वयं कभी न करना चाहिए क्योंकि जो दूसरों के दोष को देखकर वैसे कर्म स्वयं करता है उस पुरुष की जगत में हंसी होती है।

कोई किसी का उपकार नहीं करता है तथा कोई किसी को कुछ नहीं देता है, प्राणी जो कुछ करता है वह सब अपने लिए ही करता है।

अपने माता पिता को तथा अपने सहोदर भाई को भी यदि वह अपने बड़प्पन व स्नेह को छोड़ देते हैं तो मनुष्य उनको त्याग देता है फिर औरों की तो बात ही क्या है? (महाभारत)

सच्चा सुख

गतांक से आगे

[ले० श्री शान्ति मंडल छावनी नीमच से प्राप्त]

स्पर्श विषय का सदुपयोग यही है कि श्री भगवान् के चरणों को मस्तक से छूना तथा सन्त पुरुषों के चरणों का आलिंगन करना चाहिये।

(३) रूप-जिस प्रकार कि पतंग तेज में लोभाए मान होकर जल मरता है तैसे ही मनुष्य भी स्त्रियादिक के रूपपर मोहित होकर नाश को प्राप्त होता है। नेत्रेन्द्रिय रूप विषय को भोगती है स्त्री उपर से चाहे कीतनी ही सुन्दर क्यों न दिखती हो लेकिन भीतर वह घृणित तथा मलीन वस्तुओं से भरी हुई है अतएव स्त्री आदि के रूपपर मोहित न होकर कोटि कामदेव से भी अधिक सुन्दर प्रभु परमात्मा के महा मंगल मय मुखारविन्द पर तथा ज्ञानीजन संत महात्मा के दर्शन करने में प्रेम करे यह रूप विषय के सेवन की सफलता सार्थकता है।

(४) रस-जिस प्रकार मछलिये इसी विषय में अपने प्राणों को खोदेती हैं इसी प्रकार जिव्हा मनुष्य को फांसी में डालदेती है। सदैव अति पोष्टिक तथा सारा सड़ा खाने से इन्द्रिये प्रबल होजाती है और नाना प्रकार के उपद्रव करती है तथा शरीर को अपकृत्य में फंसा देती है।

इस रसना इन्द्रिय जिव्हा द्वारा भाषण भी होता है जिव्हा ओष्ठ तथा दांतों रूपी किले के भीतर रहती है, इसलिये इसके द्वारा नाना प्रकार के कुवाच्य कठोर जो कि कानों को अप्रिय लगे उनका उच्चारण करना वीभत्स गीत गाना पराये की निंदा करना तथा मिथ्या भाषण करना इत्यादि कार्य न करके प्रभु के गुणानुवाद गाना तथा उसके पवित्र नामका जिव्हा से स्मरण करना परायी निन्दा न करना हमेशा सत्य बोलना इत्यादि इस प्रकार रस विषय का सद् उपयोग करना चाहिये।

(५) गंध-यह विषय मनुष्य को उन्मत्त करदेता है अनेक प्रकार के सुगन्धित पदार्थों का सेवन करने से इन्द्रियें विलासिनी बन जाती हैं जिससे कामना की वृद्धी होती है इसकी वृद्धी होने से मनुष्य संसार से पार नहीं हो सकता। गंध विषय का सद् उपयोग यह है कि मनुष्य संत पुरुषों के चरणों की रज को 'सूंघे अर्थात् चरणों की रज अपनी नासीका तथा मस्तक पर लगावे।

उपर लिखे अनुसार यदि विषयों का सेवन किया जावेगा तो ईश्वर भक्ति में कोई भी विषय बाधक नहीं हो सकते और अपने को लाभ कारी ही होगा।

मनुष्य का कर्त्तव्य है कि शत्रुओं को मित्र बनालेवें जिस प्रकार इस संसार में अपने से वैर भाव रखने वाले शत्रु होते हैं वैसे ही परमार्थ में भी ६ शत्रु हैं यह मनुष्य के वैरी होकर उत्पन्न नहीं हुये हैं किन्तु विषयों के अनुसार अच्छे बुरे दोनों मार्गों में चल सकते हैं।

६ शत्रु निम्न लिखित हैं(-

(१) काम (२) क्रोध (३) लोभ (४) मोह (५) मद (६) मत्सरता।

(१) काम-अपने को प्रिय लगने वाली वस्तु (स्त्री पुत्रादिका को प्राप्त करने की अभिलाषा को काम कहते हैं।

(२) क्रोध-अपने विचार अनुसार काम न होने से जो मन की उद्वेग वृद्ध है उसे क्रोध कहते हैं।

(३) अमुक वस्तु मेरे पास नहीं है सो होजाय अथवा जो इस समय धनादि हैं सो घरे तो नहीं लेकिन अधिक होजाय ऐसी तृष्णा को लोभ कहते हैं।

(४) मोह-किसी वस्तु (स्त्री पुत्र धनादि) पर आसक्त होकर उसपर अत्यन्त प्रीति बढ़ाना तथा उनके दुःख सुख में अपने को दुःखी सुखी मानना इसका नाम मोह है।

(५) मद-किसी भी बात का अहंकार करना इसी का नाम मद है। जैसे मैं पैसे वाला हूं मेरी बराबर कोई नहीं है मैं उससे क्यों नमन करूं, मेरी उसकी क्या समानता है मैं गुणवान हूं प्रतिष्ठा वाला हूं इत्यादि बातों के अहंकार को मद कहते हैं।

(६) मत्सरता-अन्य मनुष्य का शुभ काम होते हुये देखकर अपने मन को बुरा लगना अथवा उसका बुरा सोचना, इत्यादि को मत्सर कहते हैं।

यदि इस प्रकार इनका उपयोग नहीं किया जावे और निम्न लिखे अनुसार उपयोग में लाये जावें तो वे मित्र बनजायेंगे।

(१) काम-जो कि स्त्री पुत्र और धनादि में किया जाता है काम तो वहां अन्तः करण पूर्वक न रखकर प्रभु के शान्त मय स्वरूप में रखा जाय और श्री भगवान् के साक्षात कार की इच्छा की जाय तो काम सफल होकर मित्र बनजायगा तथा हित करेगा।

(२) क्रोध- दूसरों पर क्रोध करने का क्या प्रयोजन है अर्थात् दूसरों पर क्रोध न करना चाहिये लेकिन अपने ही मन की वृत्तियों पर जब नीच कार्य्यों में लगती है तब वृत्तियों को रोकने के लिये क्रोध करना चाहिये। इस प्रकार करने से अपने आप मनो निग्रह होगा और क्रोध मित्रता का वर्त्ताव करेगा।

(३) लोभ-धनो पार्जन में जितना लोभ किया जाता है उतना न करके अपना संसार व्यवहार भली भांति से चल सके इतना धन प्राप्त होने तक लोभ रक्खे फिर परमात्मा के नाम स्मरण का और भजन कीर्तन में अधिकाधिक लोभ रखना चाहिये। और ईश्वर भजन का अधिक लोभ रखना उचित है।

(४) मोह-अन्याय स्थलों में यथोचित मोह रख कर यथा आवश्यक प्रेम रखकर शेष सच्चा प्रेम तथा अधिक मोह श्री हरि के मुखारविन्द पर रखना और उस ही सांवली सूरत पर मोहित होना चाहिये। इस प्रकार मोह को मित्र बनालेना उचित है।

(५) मद-मद जो अन्य प्राणियों के साथ किया जाता है कि उसने मेरे को नमन क्यों नहीं किया मैं उससे प्रतिष्ठा वाला हूं। इत्यादि इस प्रकार का मद अतिशय हानि कारक है ऐसे मद करने वाले का नहीं मालुम कि कब नाश होजाय। अपने आपको सबसे योग्य व बुद्धिमान समझ ने वाला निंदा का पात्र बनता है। इसलिय मनुष्य को उचित है कि मद अपने शरीर पर करे कि मैं मनुष्य प्राणी हूं पशु पक्षियों से क्या मेरी योग्यता कम है। पशु पक्षी योनियों में तारणों पात्र नहीं बनता तो क्या मैं भी इस असार संसार से पार होने का उपाय नहीं कर सकता तो फिर मेरे में और अन्य योनियों में कुछ भी फरक नहीं है इत्यादि इस प्रकार मद का उपयोग करना चाहिये।

(६) मत्सर-अमुक के पास कुछ भी नहीं था अब तो वह बड़ा धनी होगया अमुक मेरे से सुखी और धनी है यह मेरे को अच्छा नहीं लगता ईश्वर करे तो वह मेरे से मानहीन तथा कम सुखी कम धनवान होजावे, लेकिन इस विचार द्वारा मत्सर का उपयोग नहीं करना चाहिये नहीं तो हानिकारक हो जायगा। इस प्रकार मत्सर का सदुपयोग करना चाहिये कि पूर्व काल में जो महान मनुष्य होगये जिन्होंने ईश्वर भक्ति से उसके स्वरूप को जान लिया है तो क्या मैं उनसे कमहूं जो मुझ से ऐसा नहीं हो सकता। मैं कोनसे कारण से अयोग्य हूं। कि जिससे परमात्मा मुझसे प्रसन्न नहीं होते। इस प्रकार उपयोग में लाने से मत्सर हित करेगा।

प्रिय माननिय सज्जनों!

इन पांच सुखकारी विषयों को तथा ६ गुणों को जिनको कि विवश होकर शत्रु कहना पड़ता है यदि इनका सेवन योग्य रीति से उपर लिखे अनुसार किया जावे तो ये मित्र की गरज साधते हैं। और मनुष्य के लिये कल्याण कारक होजाते हैं। शत्रुओं को मित्र बनाना मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है। जो मनुष्य इस दुःख रूपी संसार से पार होना चाहता हो तो उसको उचित है कि इन शत्रुओं को अपना मित्र बनालेवें।

उपर के लेख से आप समझ गये होंगे कि इस संसार में सच्चा सुख क्या है। सच्चा सुख केवल ईश्वर भक्ति है। इस संसार में मनुष्य का प्रथम कर्तव्य यही है कि ईश्वर भक्ति करे कारण भक्ति से ही चोरासी लक्ष योनियों के जन्म मरण के दुख दूर हो सकते हैं अन्य से दुःख दूर नहीं

हो सकते जब यह स्वर्ण की चिड़िया उड़ जायगी तो फिर हाथ मल मल के शिर धुन धुन के पछताना पड़ेगा इसलिए भाईयो नव दूषण जो कि निम्न लिखे हैं इनको त्याग कर ईश्वर भक्ति करो जिससे कि संसार का आवागमन मिटजाय ।

शरीर के नव दूषण

चोरी, हिंसा, और व्यभिचार, काया के त्रय दोष विचार ।
निंदा, और कटु, वाद, असत्य, वाणी के ये दूषण साथ ॥
तृष्णा ईर्षा बुद्धि अरु क्रोध, त्रिविध दोषमन में न शोध ।
इहि प्रकार नव दूषण त्याग, कर प्रभु भजन खुलेंगे भाग ॥

अब अन्तिम बालको की विनय यह है यह लेख जो कि हम लोगों ने बुद्धी अनुसार लिखा है। यदि इसमें कोई अशुद्धी हो तो उसके लिये आप लोग क्षमा करें। यह लेख पन्डिताई अथवा बुद्धिमानी दरशाने के लिये नहीं लिखा है। लेकिन इसलिये लिखा है कि किसी भाई की बुद्धि इस लेख द्वारा ईश्वर भक्ति में लगजाय और वह अपना कल्याण करलेवे। लेख बड़ा होगया है इसलिये अब लेख को समाप्त करना उचित है लेकिन अन्तिम भी यही प्रार्थना है कि इस संसार में केवल ईश्वर भक्ति ही सार है और सब असार है। ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

भगवान् श्रीराम में राम में राक्षसेंद

रावण का मार्मिक भाव

[लेखक--महावीर प्रशाद बजरंगबली श्रीवास्तव]

खर दूषण के मारे जाने पर नाक कान विहीन शूर्पणखा ने रावण की सभा में जाकर पुकार किया, उस समय रावण के 'केइ तव नासा कान निपाता' पूछने पर शूर्पणखा ने रावण को भगवान श्रीराम का परिचय निम्नलिखित वाक्यों में दिया था:-

अवध नृपति दशरथ के जाये,
पुरुष सिंह बन खेलन आये ।
समुझि परी मोहि उन कै करनी,
रहित विशाचर करि हैं धरनी ॥
जिन्ह कर भुजबल परइ दशानन,
अभय भये विचरहिं मुनि कानन ।
देखत बालक काल समाना,
परम धीर धन्वीगुण नाना ॥
अतुलित बल प्रताप दोउ भ्राता,
खल बध रत सुर मुनि सुख दाता ।

ध्यान देकर देखा जाय तो शूर्पणखा के वाक्यों में भगवान के अवतार सूचक लक्षण बिल्कुल स्पष्ट हैं। भगवान के अवतार का प्रसिद्ध हेतु वर्णन करते हुये शिवजी ने पार्वती जी से कहा है:-

जब २ होय धर्म की हानी,
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।
करहिं अनीति जाय नहिं बरनी,

सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।
तब तब प्रभु बिबिधि शरीरा,
हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा॥

अब इन अवतार हेतु प्रकरण की चौपाइयों के साथ शूर्पणखा के वचनों में भगवान के अवतार लक्षण बिल्कुल स्पष्ट हो जाते हैं। अतएव, शूर्पणखा के वाक्यों से राक्षसेंद्र रावण के हृदय में भगवान श्रीराम के लिये साक्षात् ईश्वर होने का अनुमान हो जाना कोई आश्चर्य की बात न थी। रावण शूर्पणखा के वचनों पर रात्रि में विचार करने लगा और परिणाम में इस अनुमान पर पहुंचा:-

सुर नर असुर नाग खग माही,
मोरे अनुचर कहं कोउ नाहीं।
खर दूषण मो सम बलवन्ता,
तिनहि को मारै बिनु भगवन्ता॥

इस प्रकार विचार करके उसके हृदय से इस बातको स्वीकार करालिया, कि हो न हो अवश्य भू भार हरणार्थ भगवान ने मनुष्यावतार धारण किया है:-

अतएव इस सुअवसर को देख उसका हृदय अपने भक्त तरणोपाय के लिये लालायित हुआ। तब अपनी स्थिति के अनुसार उसने अपने संसार सागर से तरने के लिये उपाय निश्चित किया:-

सुर रंजन भंजन महि भारा,
जो भगवन्त लीन्ह अवतारा।
तौ मैं जाइ बैर हठि करऊं,
प्रभु सर प्राण तजे भव तरऊं॥
होइहि भजन न तामस देहा,
मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा॥

भाव यह कि मेरे अनुमान के अनुसार यदि यथार्थ में देवताओं की रक्षा तथा भूभार हरण के अर्थ साक्षात् भगवान् ने मनुष्यावतार धारण किया है तो मेरे लिये भी यह क्या ही अच्छा अवसर है कि मैं प्रभु से जाकर हठ पूर्वक वैर कर उनके बाणों से प्राण त्याग कर भव सागर से तर जाऊं। यही एक मात्र मेरे लिये कल्याण का उपाय हो सकता है क्योंकि तामस शरीर से भजन तो हो नहीं सकता अतएव मन कर्म वचन से यही दृढ मन्त्र मेरे लिये ठीक है। इस प्रकार रावण ने अपने भव तरणी पाय के लिये प्रभु के प्रति वैर करने और उनके बाणों से प्राण त्याग करने का संकल्प दृढ़ किया।

अब राक्षसेंद्र ने यद्यपि बहुत आदि पूर्वक सोच विचार कर श्री राम के साक्षात् भगवान् होने का अनुमान किया है। पर फिर भी है तो अनुमान ही। और अनुमान की बात कितनी ही युक्ति पूर्ण क्यों न हो पर उसमें सन्देह की गुंजाइश रहती ही है। अनुमान में यदि संदेह की गुंजाइश लेश मात्र भी न रहे तो उसे अनुमान न कहकर निश्चय कहते हैं। इसी से यहां 'जो' का शब्द साथ में लगाया गया है। जो भगवंत लीन्ह अवतारा।

अतएव कदाचित् यह अनुमान ठीक न निकला तो क्या होगा? इस संभावना को सम्हालने के लिये दूसरे इष्ट कोण से भी अपनी लाभ हानि पर दृष्टि करके आगे उस पक्ष को भी संभालता है कि:-

जो नर रूप भूप सुत कोऊ,
हरिहौं नारि जीति रण दोऊ॥

तात्पर्य यह कि कदाचित् मेरा उपरोक्त अनुमान ठीक न भी निकला, और साक्षात् भगवान् न होकर कोई राज कुमार ही हुये तो भी वैर करने में कोई हानि न होकर लाभ ही होगा कि दोनों राज कुमारों को लड़ाई में जीत कर स्त्री ले लूंगा।

इस प्रकार दूसरे दृष्ट कोण से भी अपना लाभ सोचकर रावण अपने पूर्व संकल्प में अटल होगया। तात्पर्य यह कि दूसरा विचार तटस्थ रूप से प्रथम दृढ संकल्प के अनुसार कर्तव्य को निश्चयात्मक बनाने के लिये हो था।

किसी २ सज्जन का विचार है कि 'जं' शब्द से रावण ने भगवान् की परीक्षा करने की चेष्टा की, कि मैं परीक्षा करके देखूंगा जो भगवान् हुये तो वैर करके उनके बाणों से प्राण त्याग भव सागर से तर जाऊंगा, और जो नर रूप कोई भूप सुत हुये तो 'हरिहौं नारि जीति रण दोऊ'। और ऐसा विचार करके ही उसने मारीच से कपट मृग बनने का अनुरोध किया तात्पर्य यह कि यदि साक्षात् भगवान होंगे तो माया मृग को पहचान लेंगे। यदि माया मृग को पहचान न सके, तो समझ लूंगा कि भगवान न होकर मनुष्य ही हैं। इस प्रकार जब भगवान् कपट मृग के पीछे दौड़े तभी रावण ने निश्चय कर लिया कि भगवान् न होकर यह मनुष्य ही हैं। और तब से वह भगवान् श्रीराम को भगवान् न मान कर प्राकृत मनुष्य ही मानता रहा।

पर यहां ध्यान देने की बात यह है कि जिस रावण को इतना ज्ञान था कि 'होइहि भजन नहीं तामस देहा' और इसी लिये भजन छोड़ उसने वैर भाव का आश्रय लिया। उस रावण को क्या इस बातका होश न था कि तामस देह होने से जब मैं प्रभु के भजन में ही असमर्थ हूं। तो जो प्रभु मन वाणी से परे हैं। बड़े २ मुनीश्वर जिनकी माया का पार नहीं पाते उन्हें मैं परीक्षा करके कैसे पहचान सकूंगा। फिर ऐसी दशा में वह प्रभु की परीक्षा करने का साहस करता यह बात कैसे संभव थी। अतएव परीक्षा करके भगवान को पहचानने की चेष्टा उसने की। इस तरह का अनुमान खींच तान करके करना इस प्रसंग के लिये बहुत ही असंगत है।

फिर दूसरे विचार में यदि नर रूप कोई भूप सुत ही हुये। तो 'हरिहौं नारि जीति रण दोऊ' कहा है। जिसका स्पष्ट अर्थ यह है। कि तो दोनों को रण में जीत कर स्त्री हरण करूंगा। पर यहां प्रसंग में राज कुमारों को रण में जीत कर नहीं। किंतु पहले ही सीता जी को हरण करने का विचार किया है। इससे भी यह स्पष्ट है कि इस हरण में प्रभु के प्रति वैर स्थिर करना ही हरण का कारण है दूसरे विचार की पुष्टि का प्रसंग यहां नहीं है।

फिर किसी तरह यहां स्वीकार ही करलिया जाय कि परीक्षार्थ ही रावण ने मारीच को कपट मृग के पीछे दौड़ने से ही उसने भगवान् श्रीराम को मनुष्य निश्चत कर लिया। तो आगे लंका कांड में युद्ध के समय रावण ने अपार माया की है यथा-:

सही न जाय कपिन्ह के मारी।
तब रावण माया विस्तारी॥
देखी कपिन्ह निशाचर अनी।
अनुज सहित बहु कोशल धनी॥

उस समय भगवान् ने निमिष मात्र में अपने बाण से उस माया को हरण कर लिया। उस समय रावण का एक भी कपट न चला यथा:-

निज सेन चकित विलोकि हंसि सर चाप सजि कोशल धनी।
माया हरि हरि निमिष महं हरषी सकल मर्कट अनी॥

उस अवसर पर तो अवश्य ही वह श्रीराम को मनुष्य न मान कर साक्षात् ईश्वर स्वीकार कर लेता। पर ऐसा न होकर उस समय भी रावण श्री राम को प्रगट में साक्षात् भगवान न कहकर

'तापस' शब्द से ही संबोधन करता है। यथा–

जीतेहु जे भट संयुग माहीं ,सुनु तापस मैं तिन्ह समनाहीं।

इत्यादि पुनः प्रभु ने जब निम्न लिखित प्रकार उत्तर दिया–

सत्य सत्य सब तव प्रभुताई,
जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई।

जनि जल्पना करि सुजस नासहि नीति सुनहि करहि छमा संसार महं पुरुष त्रिविधि पाटल रसाल पनस समा इत्यादि इस पर भी प्रभु के वचनों को कोई युक्ति युक्त उत्तर न देकर उन्हे प्रगट में मनुष्य सूचक वचन कह कर उपहास ही करता है।

राम बचन सुनि बिहंसा, मोहि सिखावत ज्ञान।
बंधु करत नहिं तव डरे, अब लागें प्रियप्रान॥

अतएव रावण ने भगवान् की परीक्षा करने के उद्देश्य से मारीच को कपट मृग बनाया। यह कल्पना बिल्कुल असंगत है। किन्तु 'तौ मैं जाइं बैर हठि करऊं, प्रभु शर प्राण तजे भव तरऊं के अनुसार हठ पूर्वक प्रभु से बैर करने के लिये। जानकी जी के हरण के उद्देश्य से ही मारीच को कपट मृग बनाया। यह बात प्रसंग के अनुकूल है।

सीता हरण प्रसंग में भी रावण के यती वेष छोड़ अपना रूप दिखाने और नाम सुनाने पर जब श्री जनकी जी ने उसको फटकारते हुये निम्न लिखित वचन कहे:–

कह सीता धरि धीरज गाढ़ा,
आय गयउ प्रभु रहु ठाढ़ा।
जिमि हरि बधुहि छुद्र सशा चाहा,
मनसि काल बस निसिचर नाहा॥

उस समय जानकी जी के इन शब्दों को सुनकर प्रगट में रावण ने क्रोध दिखाया मैं श्री जानकी जी के चरणों की बन्दना कर सुख अनुभव किया। यथा–

सुनत बचन दश सीश रिसाना,
मन महं चरण बन्दि सुख माना।

इससे भी रावण के हृदय का भाव खुलजाता है कि वह अपने दृढ़ संकल्प के अनुसार बैर भाव सम्हालने के लिये बाहर से क्रोध प्रगट करता है। पर मनसे अपने आन्तरिक अनुमान के अनुसार सीता जी को आदि शक्ति समझ उनके चरणों की बंदना करता है। और सुख अनुभव करता है।

जिनका यही हठ है कि कपट मृग के पीछे दौड़ने से ही रावण ने श्री रामचन्द्र जी को मनुष्य निश्चत करलिया वे लोग इस अवसर पर मनको समझाने के लिये यह कल्पना करलेते हैं कि रावण पतिव्रत धर्म को जानता था। इसी से सीता जी को पतिव्रता समझ मनमें चरणों की बन्दना की और सुखमाना, पर ध्यान देकर देखा जाय तो इस समय पतिव्रता की सराहना का कोई विशेष अवसर नहीं है। अतएव यह भी केवल मनको समझा लेने के लिये क्लिष्ट कल्पना मात्र है।

प्रत्युत आदि शक्ति के भाव से 'मन महं चरण वंदि सुख माना' प्रसंगानुकूल है कारण कि अपने अनुमान की पुष्टि का थोड़ा अवसर भी देख कर सुख को प्राप्त होगा। यह अनुमान कर्ता के लिये स्वाभाविक बात है फिर यहां तो अपने अनुमान की पुष्टि, और साक्षात् आदि शक्ति के साक्षात्कार का अवसर है।

इसके अतिरिक्त मारीच, हनुमान, विभीषण, अंगद, मंदोदरी आदि ने अनेक प्रकार से प्रभु का

ऐश्वर्य भाव प्रगट करते हुये बहुत ही युक्ति पूर्ण शब्दों में रावण को समझाया है। पर प्रत्येक संवाद में रावण ने किसी के कथन का युक्ति युक्त उत्तर देने का प्रयत्न करके, किसी को बातों में टालकर किसी को डाट बता कर, किसी को शत्रु का पक्ष पाती कह लात मार कर ही भगवान् के साथ सन्धि करने के सम्मत से अपना पीछा छुड़ाया है। प्रत्येक संवाद पर दृष्टि डालने से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

अब यहाँ पर यदि यह कहदिया जाय, कि रावण उन सब उपदेष्टाओं के कथन को समझ सकने में ही असमर्थ था। तो यह अनुमान बड़ा ही हास्य प्रद होगा। क्योंकि रावण मूर्ख और अशिक्षित नहीं था। वह विद्वान तथा नीति शास्त्र का अपूर्व पंडित था। यह बात प्रसिद्ध है। वेदों पर भाष्य करना भी उसका प्रसिद्ध है अतएव यहां मर्म की बात यही है कि वास्तव में वह स्वयं श्री रामचन्द्र जी को साक्षात ईश्वर अनुमान कर चुका था। इस पर उन सब उपदेश करने वालों के युक्ति पूर्ण उपदेश से भीतर ही भीतर उसका अनुमान और भी पुष्ट होता जाता था। पर फिर भी उसने अपना कल्याण प्रभु के प्रति वैर करके उनके बाण से प्राण त्याग करने में ही निश्चय करलिया था। अतएव भगवान् के साथ सन्धि कर लेने का सम्मत उसके अपने निश्चय किये हुये मार्मिक कल्याण पथ के विरुद्ध पथ के विरुद्ध पड़ता था। पर इस मार्मिक भाव को वह सबके सामने प्रगट नहीं करना चाहता था। साथ ही कुछ अधिक वादा विवाद करने पर कहीं बुद्धि भेद होकर अपने दृढ़ संकल्प से विचलित न होजाऊं इसबात से भी सावधान रहना प्रसंगानुकूल है। इन्हीं कारणों से वह किसी के युक्ति युक्त उपदेश पर कुछ वाद विवाद न करके सबको किसी न किसी तरह टाल देना ही उचित समझता था।

और भी रावण का अनेक स्थलों पर श्री रामचन्द्र जी से हृदय में भय भीत होना भी पाया जाता है। यथा-

१-सीता हरण प्रसंग में-

क्रोध वन्त तब रावण, लीन्हेसि रथ बैठाय।
चला गगन पथ आतुर, भय रथ हांकि न जाय॥

२-जटायु युद्ध प्रसंग में-

सीतहिं घान चढ़ाइ बहोरी, चला उताइल त्रास न थोरी।

३-विभीषण के पीछे भेजे हुये गुप्त चरों के लौटने पर उनके द्वारा प्राप्त लक्ष्मण जी के पत्र को सुनने पर-

सुनत सभय मन मुख मुसुकाई,
कहत दशानन सबहिं सुनाई॥

४-सेतु बन्ध का समाचार सुन कर-

सुनत श्रवण वारिधि बंधाना,
दश मुख बोलि उठा अकुलाना।
निज बिकलता बिचारि बहोरी,
बिहंसि गयउ गृह करि भय भोरी॥

अब विचार करने की बात है कि यदि रावण का श्री रामचन्द्र जी में साक्षात् भगवान् का भाव न होता। छल कपट मृग के पीछे दौड़ने से उन्हें मनुष्य ही निश्चय किये होता तो उन्हें मनुष्य समझ कर इस प्रकार का भय कदापि नहीं हो सकता था। जिस रावण के विषय में गोस्वामी जी लिखते हैं-

कर जोरे सुर दिसिप विनीता,

भृकुटि विलोकत सकल सभीता ॥
जग सृष्टि जहं लगि तनु धारी,
दश मुख वश वर्त्तो नर नारी ।
आयसु करहिं सकल भय भीता,
नवहिं आइ नित चरण विनीता ॥

जिस रावण का यहां तक कथन स्पष्ट है—

नरके कर आपन वध बांची,
हंसेऊं जानि विधि गिरा असांची ॥

वह रावण मनुष्य मान कर भी श्री रामचन्द्र से भय भीत हुआ, यह अनुमान करना भूल ही है। अतएव राक्षसेंद्र रावण के चरित्र की मार्मिकता पर दृष्टि डालने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अन्तः करण से उसका श्री राम चन्द्र जी के प्रति साक्षात् भगवान् का ही भाव था। और यह भाव युद्ध चरित्र में बराबर दृढ़ होता गया। पर साक्षात् भगवान अनुमान करके भी उसके साक्षात् प्रभु के साथ वैर भाव दृढ़ करके ही अपना कल्याण निश्चय किया था इसलिये प्रगट चरित्र में अन्त तक उसने प्रभु के प्रति वैर भाव का निर्वाह करके अन्त समय भी।

गिरत भोर रव गर्जेसि भारी,
कहां राम ? रण हतौं प्रचारी ॥

इस प्रकार अपने भाव के अनुसार ही प्रभु का नाम उच्चारण करके प्रभु के बाणों से प्राण त्याग परम पद को प्राप्त हुआ।

खल मल धाम काम रत रावण,
गति पाई जो मुनिवर पावन ॥

॥ प्रेम सरोवर ॥

(रचयिता श्री कन्हैयालाल जी पोद्दार)

क्या ही प्रेम सरोवरीय सुषमा सौन्दर्य शाली बनी,
चक्राकार सुधार सोभित जहां है दिव्य बुर्जे बनी।
अन्तर्निर्मल नीर शीतल सदा सुस्वादु गम्भीर है,
है अत्यन्त सुहावनी कुमुदनी शृंगादिकों भीड़ है ॥

(२)

आते हैं बन जीव जन्तु सब जो आशा लगाये हुये।
पाते जीवन दान हैं सब वहां जाते ठगाये न वे ॥
हैं वे तो गुणधाम हीन गुण से जिसके नहीं भेद है।
जो है नित्य उदार चित्त उनमें सारी धरा एक है ॥

(३)

चारों ओर लता पता सघन हैं वेभी दिखाती भली,

फूले फूल कदम्ब कूल उनकी सौरभ आती चली।
छाया भी रहती निरन्तर जहां सन्ताप हारी घनी,
है निष्पंक अतीव तीर उसकी शोभा निराली बनी॥

(४)

है स्वतंत्र लगी जहां निकट ही गंभीर वृक्षावली,
चक्राकार कहीं कहीं सहज ही सौन्दर्य श्रेणी मिली।
आभा भूमि लगी विनीत उनकी है नील पत्रावली,
फूली चित्र विचित्र मंजुल कहीं अन्यत्र पुष्पावली॥

(५)

क्रीड़ा सक्त कहीं कपोत फिरते उन्मत्त होके महा,
बोलें कोकिल पुंज मंजुल कहीं स्वर्गीय ताने जहां।
उन्माकार कलाप नृत्य रत है प्यारी मयूरावली,
चित्ता कर्षक है सुरम्य तटके प्रान्तीय वन्यस्थली॥

(६)

जो हैं प्रान्त कुटीर तीर उनकी शोभा मनो मोहिनी,
वे एकान्त नितान्त शान्त उनमें है स्वच्छता जो घनी।
लागे हैं तुलसी महीरुह जहां पुष्पावली भी कहीं,
आती धीर समीर सीतल सदा सौरभ सानी वहीं॥

(७)

सुरभि तह रियाली में जहां मत्त होके,
मुखरित विहगाली चित्तको है लुभाती।
सुमधुर रससाली बोलियों को सुनाके,
मनहर पथिकों को पास मानो बुलाती॥

(८)

प्रति प्रति तरुओं की डालियों पास जाती,
भ्रमरित भ्रमराली क्या यही है बताती।
यह वन लतिकाएं भाग्य शाली बड़ी हैं,
प्रतिदिन करते श्री कृष्ण लीला यहीं हैं॥ *

---

* ब्रज मंडल में नंदगाम और बरसाने के बीच में श्री राधागोपाल जी का मंदिर है मंदिर के "प्रेम सरोवर नामका रमणीक सरोवर है उसी की शोभा का वर्णन पूज्य पोद्दार जी ने किया है।

खान पान

[ले०-श्री यमुनाप्रसाद श्रीवास्तव नरसिंहपुर]

सत्युग में प्राण हड्डियों में, त्रेता में मांस में और द्वापर में रुधिर में रहते थे परन्तु अब इस कलियुग में तो केवल खान पान में ही रहते हैं:-

कृते त्वस्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांस माश्रिताः।
द्वापरे रुधिरंचैव कलौ त्वन्नादिषु स्थिताः॥

इसलिये इस युगमें खाने पीने की अधिक सावधानी रखना चाहिये। तथा भोजन को अपने उदर पूर्ति के लिये ही नहीं वरन भगवान के पूजन के निमित्त बनाना चाहिये क्योंकि वे ही वैश्वानर जठराग्नि बनकर प्रत्येक प्राणी के हृदय में निवास करने और अपान और प्राण वायु के द्वारा चर्व्य, चोष्य, लेह्य और पेय चारों पदार्थों का भक्षण करते हैं।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देह माश्रितः।
प्राणापान समायुक्तः पंचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥

सर्व प्रथम भोज्य पदार्थों को भगवान को समर्पण करे फिर देवता पित्रादि को जिमा कर स्वयं कुटुम्बसहित प्रसाद रुपसे भक्षण करे।

देवान् पित्रन् समुद्दिश्य यद्विष्णोर्वि निवेदनम्।
तानुद्दिश्यततः कुर्यात् प्रदानंतस्य चैवहि॥
पश्च यज्ञान् समाप्यैवमन्ने विष्णु निवेदिते।
भुञ्जीत स्वजनैः सार्धंयथा भागं गृही स्वयं॥

जो व्यक्ति केवल अपने ही लिये भोजन का आयोजन करता है जिसका स्त्री सहवास धर्म के लिये नहीं होता और जो आजीविका के लिये ही विद्या पढ़ता है उसका जीना वृथा है।

आत्मार्थं भोजनं यस्यस्यर्थं यस्य भोजनम।
वृत्यर्थं यस्य चाधीतं निष्फलं तस्य जीवितम॥

जो केवल अपने लिये ही भोजन बनाता है वह पापका भक्षण करता है। पञ्चयज्ञ करने से बचा हुआ भोजन ही सज्जन पुरुषों का शास्त्रानुमोदित भोजन।

अघंस केवलं भुङ्क्तेयः पचत्यात्म कारणात्।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत् सतामन्नं विधीयते॥

जो देवता अतिथि भृत्य संतुष्ठ नहीं करता वह सांस लेता हुआ भी धौंकनी के समान निर्जीव है।

देवतातिथि भृत्यानां पितृणा मात्मनश्चयः।
नदिवं पति पञ्चानामुच्छ्वसन् सन जीवति॥

जिस घर में गृह स्वामी अन्नपानादि समस्त वस्तुओं को भक्ति पूर्वक नारायण अर्पण करके परिवार सहित व्यवहार में लाता है उस घर में भगवान रमण करते हैं।

सर्वंयत्रान्न पानादि गृही विष्णु निवे दितम्।
परिवारै स्तो भुंक्ते तत्र वसते हरिः॥

जो भवन सदा झाड़ा और बुहारा जाता है, जिसमें पवित्र जल शैय्या और पवित्र भोजन और वस्त्र रहते हैं अर्थात् जहां अपवित्र वस्तुओं का

नाम तक नहीं रहता वहां भगवान् निवास करते हैं

सुसंस्कृते सुसंभृते पदगृदे सर्वतः शुचौ।
विशुद्धान्नानपानानि तत्रैव रमते हरिः॥

भगवान् की दी हुई वस्तुओं को जो भगवान को समर्पण किये बिना ही खालेते हैं अथवा व्यवहार में लाते हैं वे चोरी के भागी होते हैं।

तैर्दत्तान प्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः।

जगत् के सभी प्राणी अन्न से बनते हैं। अन्न से ही रज और वीर्य बनता है, रज और वीर्य से अस्थि, चर्म, मांस रुधिर मन, प्राण, बुद्धि, वाणी आदि सभी अवयव बनते हैं।

रसाद् रक्तं ततो मांस मांसान्मेदः प्रजायते।
मेदसाऽस्थि ततो मज्जा मज्जाया शुक्रसंभवः॥

इस प्रकार सारा शरीर अन्न से बने हुये रज और वीर्य से ही बनता है।

है जग मूतको औ मूतहि को बन्यो,
मूत को भाजन मूत में पाग्यो।
खेत में मूत खतानि में मूत,
औ मूतहि मूत दसौं दिशि जाग्यो॥
भाषें निरञ्जन अमूत मूत है,
मूतहि सों जग है अनुरागयो।
तात को मूत औ मात को मूत,
ते नारि को मूत ले चाटन लाग्यो॥

माता जैसा अन्न खाती है वैसी ही संतान उत्पन्न होती है। संतान का सदाचारी और दुराचारी होना भी भोजन की पवित्रता पर निर्भर है। मनके सभी परमाणु भोजन से बनते हैं। भोजन जितना पवित्र होता है मन भी उतना ही पवित्र बनता है और वह उसी परिमाण में आत्मज्ञान की प्राप्ति में सहायक होता है।

'जैसा खावे अन्न तैसा होवे मन,
जैसा पीवे पानी तैसी होवे वानी॥
आलस्यं कर्म नाशाय, बुद्धिनाशाय निर्धनम।

जो शुद्ध और पवित्र भोजन करते हैं वे उत्तम कुल में जन्म पाते हैं और जो अपवित्र तथा अशुद्ध भोजन करते हैं वे कुत्ते शूकर चाण्डाल आदि की नीच योनियों को सुशोभित करते हैं।

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्ण-
मापद्यते जाति परिवृत्तौ।
अधर्मचर्ययापूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं-
वर्णमापद्यते जाति परिवृत्तौ॥

नीच वर्ण वाला पुरुष धर्म का पालन करने से दूसरे जन्म में उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है और उत्तम वर्ण का पुरुष स्वधर्म की अवज्ञा करने से नीच वर्ण में जन्म पाता है। इसलिये धर्म शास्त्र में अशुद्ध और अपवित्र भोजन करने की मनाई की है और कहा है।

'तद् दुष्ट भोजने न विद्यते।'

और भी:-

'अयं तस्य सुचि भोजनादभ्युत्थो न विद्यते ।'

जिसको भक्ष्य अभक्ष्य का विचार नहीं है जो सर्व प्रकार के कर्म करता है और अशुचि रहता है, जिसने सर्व प्रकार के वेद विदित गुण और आचारों

वाचनं मान नाशाय, कुल नाशाय भोजनम ॥

शौच स्नानादि प्रातः कालिक कर्म भी भगवान् की आराधना करने का अधिकार प्राप्त करने के निमित्त ही करना चाहिये क्योंकि बिना शरीर की शुद्धि किये भगवान् की आराधना की नहीं जा सकती। इसी प्रकार अन्य कर्मों को भी भगवान् की आराधना समझ कर ही करना चाहिये कहा भी है।

जेता चलू लेती प्रदक्षिणा, जो कछु करूं सो पूजा ।
गृह उद्यान एक समजानो भाव मिटाओ दूजा ॥

वास्तव में ऐसी ही दृष्टि की आवश्यकता है। गीता का निष्काम कर्म भी यही है और वस्तुतः बात भी यही है कहा भी है।

एक अनन्त निकाल सब व्यापक शक्ति दिखाय ।
सिरजत पालत हरत जग महिमा वरनि न जाय ॥

समय, दशा, स्थान, आहार, कुल संगत आदि का प्रभाव भी मनपर पड़ता है और उन्हीं के अनुसार मनकी दशा बदलती रहती है। प्रत्येक मनुष्य के शरीर में एक प्रकार की विद्युत शक्ति रहती है जो उनकी प्रकृति और चरित्र के अनुसार भिन्न प्रकार की होती है। और एक साथ भोजन करते समय एकके शरीर से निकल कर दूसरे के शरीर में प्रवेश हो जाती है और उसके मस्तिष्क और शरीर पर प्रभाव डालकर उसकी बुद्धि और आत्मा को मलिन करदेती है। भगवान् श्रीकृष्ण जी ने इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है और अर्जुन को उपदेश देते हुये कहा है-

'हे अर्जुन! किसी मनुष्य के संग एक पात्र में भोजन करना बड़ा दोष है। क्योंकि मालुम नहीं कि पूर्व जन्म में वह कौनसी देह में था। उसके साथ भोजन करने से उसकी पूर्व जन्म की प्रकृति मनुष्य के अन्तःकरण में समाजाती है।

हे अर्जुन! जो मनुष्य बची हुई जूठन को दूसरी बार खाता है अथवा किसी और को खिलाता है तो वह इस महापाप से दरिद्री होता है।

'हे अर्जुन! घृत बिना भोजन करना बड़ा दोष है। रूखी रोटी खाना तो मानो प्रेत के संग भोजन करना है। जिस रसोई में बिना घृत के पकवान बनते हैं वह प्रेतात्माएँ ऊधम मचाती हैं और उस घर में दरिद्र नारायण निवास करते हैं इसलिये मनुष्य को श्रद्धानुसार घृत भोजन में सम्मिलित कर लेना चाहिये।

किसी को उच्छिष्ट अन्न न देवे। असमय भोजन न करे उच्छिष्ट शरीर से कहीं न जावे और बहुत अधिक भोजन न करे-

नोच्छिष्ट कस्यचिद दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा ।
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्व चिद्व्रजेत ॥

एक साथ बैठकर भोजन करने और एक साथ शयन करने से एक के शरीर के पाप दूसरे के शरीर में जलमें पड़ी हुई तेलकी बूंद के समान फैल जाते हैं-

आसनाद्य नाद्यान्नदसमाधात सह भोजनात ।
संक्रामन्तीह पापानितैल बिन्दुरिवां भसि ॥

इसलिये किसी के साथ, चाहे वे अपने भाई बन्धु ही क्यों न हों एक पंक्ति में बैठकर भोजन न

करना चाहिये। यदि यह असंभव हो और एक पंक्ति में बैठकर भोजन करना ही पड़े तो अपने आस पास, राख, खड़िया अथवा जलसे मेड़ बनालेवे इससे अन्य मनुष्यों की पाप वृत्तियों के संक्रमण से उसकी रक्षा होगी क्योंकि इन पदार्थों पर विद्युत शक्ति का असर नहीं होता-

भायेक पंक्तौ नाश्नीयात् संवृतः स्वजनैरपि।
कोऽहि जानाति किंकस्य प्रविश्यं पातकं भवेत्॥
भस्म रेखाम्बुज द्वारमार्गैः पापं च भेदयेत।

आरोग्य शास्त्र में पिता और पुत्र को एकपात्र में भोजन करने का निषेध किया है फिर अन्य लोगों के साथ खाना पीना कैसे हो सकता है। मिस हेलन ने यंत्रोद्वारा यह सिद्ध कर दिखाया है कि परस्पर हाथ मिलाने से एक के शरीर के रोग के बीजाणु दूसरे के शरीर में पहुंचजाते है और उसे रोगी बनाकर उसकी मानसिक तथा शारीरिक वृत्तियों में हेरफेर करदेते हैं। रामायण की कथा है कि जिस समय हनूमान ने श्रीरामचन्द्र जी की मुद्रिका देकर सीताजी से प्रार्थना की कि हे देवी! यदि आप आज्ञा देवे तो मैं आपको अपनी पीठ पर बिठाकर इसी समय श्री रघुनाथ जी के पास पहुंचादुं परन्तु सीताजी ने यह बात स्वीकार नहीं की और यह कहा कि हे हनुमान जी! मुझे अपनी पति भक्ति का ख्याल है इसलिये मैं स्वेच्छा पूर्वक अपने पति के अतिरिक्त और किसी अन्य पुरुष का शरीर स्पर्श नहीं करना चाहती। यदि तुम कहो कि फिर रावण के शरीर से अपने शरीर का स्पर्श क्यों होने दिया था तो उसका उत्तर यह है कि उस समय मैं परवश थी और कुछ कर नहीं सकती थी:-

भर्तुं भक्ति पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर।
नाईस्पृष्टं स्वतो गात्रमिदं रक्षोवशं गतम॥
यदहंगात्र संस्पर्शं रावण स्य गता बशात।
अनीशा किंकरिष्यामि विनाथा विवशासती॥

इसलिये मैं तुम्हारी पीठ पर बैठकर जा नहीं सकती। तुम जाकर श्री रघुनाथ जी को लिआलाओ वे राक्षसों को मारकर मुझे लेजावेंगे। उनका यश भी इसी में है। ऐसी ही एक और घटना चांद के एक अंक में प्रकाशित हुई है। उसका सारांश यह है। बींद के राज कुमार का विवाह था। वे बूंदी राज्य के राजमहलों की शोभा बढ़ा रहे थे। अकस्मात उन्हें बड़ी राज कुमारी का जो रिश्ते में उनकी साली लगती थीं स्मरण हो आया और उन्होने बांदी भेजकर उन्हें बुला भेजा जब वे आई तब उन्होने उनका हाथ पकड़कर बैठने के लिये कहा। राजकुमार की यह धृष्टता देख राज कुमारी अत्यंत कुपित हुई और अपने वस्त्रों से कटार निकाल कर अपनी सुन्दर कलाई खट से काटकर फेंकदी। रक्त का प्रवाह देख, उनके पिता ने आकर कहा।

बेटी! तूने यह क्या किया?

पिताजी! इस पापिष्ट ने मुझे छू लिया है।

बेटी! यह नाता ही ऐसा है।

पिताजी चुप रहो।

महाराज ने गर्दन नीची करली और कुमारी कुपित हो, वहीं भूमि पर गिर पड़ी।

भक्ति के प्रिय पाठको! कैसा ऊंचा आदर्श है। गृह देवियों को इस पर विशेष ध्यान देना चाहिये। और लोकापवाद से तो सदैव डरते रहना चाहिये-

लोकन के अपवाद को डर धरिये दिन रैन।
रघुपति सीता परि हरि सुनत रजक के नैन॥

बिरादरी के सम्बन्ध में जब किसी के यहां

खाना होता है तब मन बड़ा चञ्चल होजाता है यहां तक कि प्रायश्चित्त करने को भी जी चाहता है। व्यवहार की दृष्टि से यह बात कुछ फीकी मालूम पड़ती है परन्तु सच्ची है। इसलिये बारम्बार प्रार्थना है कि चाहे दुख उठालो परन्तु किसी के सामने हाथ मत फैलाओ, थोड़े ही में संतोष रखो, कहा भी है-

'संतुष्टस्य सदा सुखम्।'

अच्छे मनुष्यों के यहां भोजन करने के लाभ भी बहुत हैं परन्तु वे सन्देह रहित नहीं हैं। उनसे बचने ही में कुशल है। कोई क्यों किसी का आधीन बने? और अपने गाढे पसीने की कमाई क्यों न खावे।

रूखी सूखी खायकर ठण्डा पानी पी।
देख पराई चोपड़ी मत ललचावो जी॥

तभी सन्मान प्राप्त होता है।

समय दशा कुलदेख के सबै करत सन्मान।
रहिमन! दीन अनाथ को तुम बिन को भगवान्॥

जगन्नाथ जी में सब कोई एक साथ खाते पीते हैं परन्तु उनमें भी एकता नहीं होती। अस्तु परस्पर खान पान सम्बन्धी बात शास्त्र विरुद्ध है। साफ बात यह है कि किसी से घृणा न करनी चाहिये परन्तु इतना बोझा भी नहीं उठाना चाहिये कि जिससे अपनी गर्दन टूट जावे।

नहीं रहती है वह खूबी,
स्वधर्म में दाग जब आया।

आजकल युवक लोग विलासी, जड़वादी और नास्तिक होगये हैं। उनका नीति ज्ञान शिथिल पड़गया है और धर्म भावना तो प्रायः लुप्त सी हो गई है। यह सब पश्चिमी शिक्षा का प्रभाव है।

म्लेच्छाचाराः सर्वभक्ष्या दारुणा सर्वकर्मसु।
भावना पश्चिमे कां मनुष्या नव लंकाः॥

कुछदिन पहिले दस पांच मनुष्य ही म्लेच्छाचार सुनने में आते थे परन्तु अब तो यह देखने में आता है कि बहुत थोड़े लोग ही म्लेच्छाचार से बचे हैं और भक्ष्याभक्ष्य का विचार करते हैं। और जो लोग भक्ष्याभक्ष्य का विचार करते हैं उनके पुत्र और निकट सम्बन्धी उस विचार के नहीं है। तुलसीदास जी के शब्दों में उनकी वही दशा है जो लंका में विभीषण की थी। अर्थात्-

खल मंडली बसहुं दिन राती।
सखा धर्म निबहै किमि भांती॥

सारांश यह है कि श्रुति और स्मृतियों में वर्णन किये हुए आचार ही श्रेष्ठ हैं। उन्हीं का पालन करना चाहिये।

'आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च'।

गीता में भी भगवान् ने अर्जुन से कहा है:-

कार्यअकार्य विचार में तो को शास्त्र प्रमान।
कर्म उचित यातें करन गहि शास्त्रोक्त विधान॥

ऐसे ही आचारों का पालन करने से धर्म की वृद्धि होती है और भगवान् की तटस्थता प्राप्त होती है:-

'को हट राखे धर्म को, तिहि राखे करतार।'

भक्ति के प्रिय पाठको! भगवान् को कभी मत भूलिये। सदा उन्हीं के आश्रय रहिये। क्योंकि वेही चराचर के स्वामी और रक्षक है:-

जग पेखन तुम देखन हारे।
विधि हरि शम्भु नचावन हारे॥

रात-दिन उन्हीं का भजन कीजियेः-

रैन दिन आठों याम, राम, राम, राम, राम।
सीताराम ! सीताराम, सीताराम कहिये ॥

इसी में हमारा और आपका कल्याण हैः-

बस ! अब बोलियेः-

भगवान् श्री कृष्णचन्द आनन्द कन्द वृन्दावन विहारी की जय ! जय !! जय !!!

प्रोत्साहन

[रचयिता प्रभुदत्त ब्रह्मचारी आश्रम]

मित्रो ! अपने मुख्य ध्येय को कभी भूल मत जाना।
नहीं प्रमादवश निज जीवन को सत् सरणि से फिसलाना ॥
पड़ें अनेकों विघ्न बीच में उन सबको करना स्वीकार।
धैर्य शान्ति औ क्षमा खड्ग से इन सब का करना प्रतिकार ॥
जग के नश्वर प्रलोभनों से मन को विकृत ना करना।
संयम धीरज की नौका से इस सागर को भी तरना ॥
बढ़ चलो कर्तव्य क्षेत्र में कभी न पीछे को हटना।
जो मार्ग स्वीकार किया है तन मन से उसमें जुटना ॥
यदि विरोधिनी बन कर आयें जग की लाखों शक्ति भी।
रहना अटल न कम्पित होना, करना प्रभु की भक्ति भी ॥
रखना सब से प्रेम परस्पर जो कि सुख का साधन हो।
पर सचेत रहना आसक्ति द्वारा ईप्सित-बाध न हो ॥
सहृदय कोमल मृदुता द्वारा सब को दिल से अपनाना।
आत्त दीन असहाय जनों के सुख का साधन बन जाना ॥
द्वेष ईर्षा कभी किसी से भूल हृदय में नहीं करना।
ईश्वर की सृष्टि में सबको प्रेम भावना से भरना ॥

कर्त्तव्य का ज्ञान

[ले०—प्रभुदत्त ब्रह्मचारी 'आश्रम']

इस विचित्र संसार में ईश्वर की माया से प्रेरित हुये जीव नाना योनियों में भ्रमण करते हुये कर्म सूत्र में बन्धे हुये हैं। यावन्मात्र प्राणी कर्मचक्र में भ्रमित हो रहे हैं। यह चक्र अनादि काल से अनवरत घूम रहा है। जीवन प्रत्येक प्राणी के लिये एक समस्या है। इस समस्या की पूर्त्ति के लिये जितने भी साधनों की अपेक्षा है उनमें से ईश्वर ने प्रायः मनुष्य को सबही दे रक्खे हैं। स्थावर जंगमात्मक जगत् में जड़, चेतन दो प्रकार के प्राणी हैं। चेतन जीवों में से मनुष्य को प्रायः सबसे अधिक पूर्णता प्राप्त है। बुद्धि तत्त्व (जो कि मनुष्य में सबसे विशेष वस्तु है) मानुषीय जीवन का परम आधार है। कर्म सबके लिये अनिवार्य है। भेद क्या है? यह विचार मनुष्य के ही बुद्धितत्त्व से हल होता है। बुद्धि या ज्ञान मनुष्य के लिये ईश्वर की दात में सबसे बड़ी भेंट है। मनुष्य का ज्ञान कोष इतना विशाल है कि जिससे अनन्त काल से चला आया हुवा जीवन फांस भी सुलझ जाता है। मोक्ष या मुक्ति उसी वस्तु का नाम है जिससे नाना भांति की सुख दुःखमयी संसार रूपी ग्रन्थि का खुलासा हो जाता है। अपने ज्ञानको बद्ध मूल बनाने के लिये मनुष्य ने शास्त्र रचना की कल्पना की। शास्त्र में भी ज्ञानकी आधिक्यता एवं परिपूर्णता के लिये वेद को अपौरुषेयत्व कल्पना कर वेद ज्ञान की उच्चतम कोटि का स्वतः प्रमाण उत्कृष्ट शास्त्र है। मनुष्य ने जीवन व्यवस्था के लिये शास्त्र को बड़ी कानून बनाया है। इससे सिद्ध है कि मनुष्य में ज्ञानकृत आधिक्य अवश्य है। वेद के कोष निरुक्त में मनुष्य शब्द की परिभाषा में लिखा है:—

'मनुष्याः कस्मात्, मत्वा कर्माणि सीव्यन्ति"।

कि मनुष्य क्यों कहलाता है कि जानकर कर्मों को करता है। अर्थात् पुण्य, पाप, सुख, दुख आदि कर्मों को मनुष्य कारण सहित जानता है। अतः मनुष्य को ज्ञानका अधिकार प्राप्त है। अब ज्ञान क्योंकि प्रति विषय का भिन्न २ है। इसलिये यह जानना चाहिये कि अपना, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति का क्या कर्त्तव्य है। क्योंकि ज्ञान मोक्ष में हेतु है इसलिये सबसे प्रथम अपना निजी कर्म ज्ञात होना चाहिये। इस कर्त्तव्य ज्ञान की जीवन में सबसे अधिक आवश्यकता है। कारण, जब तक भले, बुरे, व हित अहित का ज्ञान न हो तब तक मनुष्य जड़ ही कहलाता है। जड़ वस्तु की गणना अत्यन्त हीन है।

वास्तव में देखा जाए तो सबसे दुष्कर कर्म यही है। एक भयंकर जंगल में रात्रि के समय

मनुष्य मार्ग भूलजाता है। तो विपत्ति उस भूल को ही समझता है। यदि मार्ग का ज्ञान हो तो तुरन्त गमन आरम्भ करदेता है। इसी प्रकार इस भयानक संसार रूपी जंगल में कर्त्तव्य रूप मार्ग का ज्ञान होना परम सौभाग्य की बात है। इस प्रश्न को बड़े २ विद्वानों ने भी नहीं समझ पाया है। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र महाराज ने गीता में अर्जुन से साफ कह दिया है कि:-

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥

अर्थात् कर्म (कर्तव्य) और अकर्म (अकर्त्तव्य) क्या है। इस विषय पर विद्वान लोग भी मोह को प्राप्त होगये हैं। (किन्तु भगवान कहते हैं कि) वह कर्म मैं तुझे बताऊंगा, जिस से अशुभ से छूट जायगा। यहां शंका होती है कि भगवान ने क्या कर्त्तव्य बताया है। इसका समाधान दो प्रकार से होता है, एकतो यही कि जिसके द्वारा अशुभ अर्थात् दुख से छूटे यही कर्त्तव्य है। जैसा कि शास्त्रों में मोक्ष का स्वरूप वर्णन किया है। सांख्य में आरम्भ से ही कर्त्तव्य निर्देश कराया है। यथा-

"अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थः"।

तीनों प्रकार के दुःखों से अत्यन्त निवृत्ति होना ही अत्यन्त पुरुषार्थ (मोक्ष) कर्त्तव्य है। न्यायशास्त्र में भी:-

"तदत्यन्त विमोक्षोऽपवर्गः" अर्थात् दुःख का अत्यन्त नाश होना ही अपवर्ग है। कहा है। दूसरा यह कि-"कर्मणोह्यपि बोद्धव्यं" कर्म विकर्म और अकर्म तीनों को जानना चाहिये क्योंकि कर्म की गति गहन है, तथा जो कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म को देखता है वह ही मनुष्यों में बुद्धिमान् अर्थात् कर्त्तव्य का ज्ञाता है।

अब श्री भगवान् के वचन के आशय के अनुसार अपनी २ बुद्धि से सबको कर्त्तव्य का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। कारण श्री भगवान् बार बार अर्जुन से कर्म करने की प्रेरणा करते हैं और यह भी बताते हैं कि "नहि कश्चित्क्षणमपि" कोई मनुष्य एक क्षण भी बिना कर्म नहीं ठहर सकता अतः कर्म को जानकर करना ही चाहिये।

संसार में जितने मनुष्य हैं सभी कर्म प्रवृत हैं किन्तु कर्त्तव्य क्या है, इस ज्ञान से हीन होने से दुःखी हैं। यदि यह भली भांति विदित होजाय कि कर्त्तव्य यह है तो इसमें सन्देह नहीं कि दुःख से छुटकारा होजाय। वर्त्तमान काल में जो मनुष्यों में कि कर्त्तव्य विमूढता का प्रभाव है इसका कारण केवल अपने कर्त्तव्य का ज्ञान न होना ही है। इस न्यूनता की पूर्ति के लिये शिक्षा की आवश्यकता है जिस से कि सत्य का निर्णय हो सके। संसार को ऐसे पुरुषों की बड़ी आवश्यकता है जो कि समाज को यथार्थ कर्त्तव्य का निर्देश कर सकें। इसमें सन्देह नहीं कि जब २ विपत्तियों का अवसर पड़ा है तब २ समाज में कोई न कोई सदुपदेशक उत्पन्न हुवा है और पथ विचलित हुये समाज को श्रेयपथ पर चलाया है। अवतार, पीर, पैगम्बर सभी धर्मों में समय २ पर आते रहे हैं। उनको मनुष्य समाज ने तभी आदर दिया है जब कि उनसे अपना हित होता हुवा समझा है। स्वामी रामदास जी ने अनेक अवसर पर विचलित हुये शिवाजी को यथार्थ कर्म का बोध कराया है। इसी प्रकार अनेकों महा पुरुषों ने समाज का हित किया है। इस ज्ञान के बिना

मनुष्यों में अकर्मण्यता का दोष महामारी की भांति फैला जाता है। अतः प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि वह अपने कर्त्तव्य को सबसे प्रथम जाने। जिससे किसी बनको सुखमय बनासके। कर्त्तव्य ज्ञान के साधनों में से जीवन को उन्नति के पथ पर आरूढ करना मुख्य है। उन्नति सामाजिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की लक्ष्य में रखनी आवश्यक हैं। देश, काल व समाज तीनों को देख कर कर्त्तव्य का निर्णय करना चाहिये इसमें सहायक शास्त्र को मानना आवश्यक है। श्री भगवान् ने यह भी कहदिया है कि:-

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धि मवाप्नोति न सुखं न परांगतिम्॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याऽकार्य व्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

जो शास्त्र विधि को छोड़ कर अपनी इच्छा से वर्तता है न तो उसे सिद्धि मिलती है, न सुख मिलता है, न मोक्ष ही मिलता है। इसलिये कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र प्रमाण है। शास्त्र विहित को जानकर कर्म में प्रवृत्त होना चाहिये। इस वचन से भगवान् ने प्रत्येक व्यक्ति को कर्त्तव्य ज्ञान के लिये शास्त्र का आधार निर्देश किया है। अतः शास्त्र से कर्त्तव्य निर्णय करके ही कार्य में प्रवृत्त होना चाहिये। ओं शम्।

संकल्प-बल

पुराणों में सुना करते थे और पढ़ा करते थे, कि अमुक ऋषि के वर या शाप से अमुक व्यक्ति की दशा बदल गई। योग वासिष्ठ में शिला (पत्थर) में सृष्टि दिखाने का उल्लेख आता है, किन्तु अमरिका में ऐसे दृश्य आंखों के सामने प्रत्यक्ष गुजरे। यूनिवर्सिटि के मकानों और हस्पतालों में इस प्रकार के प्रयोग किये जाते हैं कि हजारों रोगी केवल संकल्प बल से अच्छे किये जाते हैं। प्रोफेसर की उत्तेजना से मेज का घोड़ी दीखना या जेम्स साहब का डाक्टर पाल हो जाना (व्यक्ति का बदलजाना) पुराने जेम्सपन का उड़ जाना यह सब अपनी आंखों देखा।

संस्कृत में वेदान्त के असंख्य उत्तम ग्रन्थ हैं जैसे दत्तात्रेय की अवधूत गीता, श्री शंकराचार्य के वेदान्त के स्तोत्र, अष्टावक्र गीता, योग वासिष्ठ के अध्याय। फ़ारसी में सबसे बढ़कर (तोहीद) अद्वैत का ग्रंथ शम्सतब्रेज का है। उससे उतर कर मसनवी शरीफ़, शेख अत्तार, मगरबी वगैरह। किन्तु अमेरिका में वाल्ट विहटमन के "तृणपर्ण" बड़ा अद्वैत का उन्माद और निजानन्द लाते हैं, जो अवधूत गीता, अष्टावक्र गीता, शंकराचार्य के स्तोत्र शम्सतब्रेज और बुल्लाशाह की कविता, बल्की इनसे भी कहीं बढ़ कर।

डट कर खड़ा हूं खौफ़ से खाली जहान में।
१ तसकीने दिल भरी है मेरे दिलमें जानमे॥
सूंघे २-जमां ३-मकां हैं मेरे पैर बिस्ले ४-संग।
मैं कैसे आसकू हूं ५-कैदे बयान मे॥

१ शान्ति २ काल ३ देश ४ कुत्ते के समान ५ उल्लेख के बन्धन में हबशी गुलामों को स्वतंत्रता देने के लिये अमेरिका के आन्तर युद्ध के दिनों यह वाल्ट ह्विहटमन प्रत्येक युद्ध में मरहम पट्टी करना प्यासों को पानी पिलान, मृत्यु मुख पुरुषों को अपनी मुस्क्यानों से जान में जान लाना और इसी समय की अपनी नवीन काव्य कृति को रात दिन गाते फिरना उसके लिये खेल का काम था इस रोने धोने की भीड़ में घोर रण भूमी में, भीषण संग्राम में ह्विटमैन ऐसा प्रसन्न चित्त और प्रफुल्लित फिरता था जैसे महादेव जी भूत प्रेत के घमसान में, या कृष्ण भगवान कुरुक्षेत्र की रंग भूमी में। धन्य थे। इन निरन्तर युद्धों के अधमुए जो ऐसे अवतार पुरुष के दर्शन करते मृत्यु को प्राप्त हुये।

शब हो हवा हो धूप हो नूफाँ हो छेड़ छाड़।
जंगल के पेड़ कब इन्हे लाते हैं ध्यान॥
गर्दिश से रोजगार के हिल जाय जिसका दिल।
इन्सान होके कम हैं दरख्तों से शान में॥

भावार्थः—चाहे रात्रि हो चाहे हवा हो चाहे धूप हो, चाहे आंधी और उसके झोंके, जंगल के वृक्ष कुछ परवाह नहीं करते। और समय के हेर फेर से जिसका चित्त अस्थिर हो जाय वह चाहे मनुष्य है, परन्तु वृक्षों की अपेक्षा तुच्छ है।

इस प्रकार का ब्रह्मनिष्ठ अमेरिका में हेन्री थोरो भी हुआ है जो सच्चे ब्रह्मचारी या सन्यासी का जीवन एकान्त जंगलों में व्यतीत करता था। अलबत्त आलस्य सेवी साधू न था। अमेरिका का सबसे बड़ा लेखक (एमर्सन) इन थोरो के सम्बन्ध में लिखता है कि, शहद की मक्खी उसकी चारपाई पर उसके साथ सोती है, किन्तु इस निडर प्रेम के पुतले को नहीं डसती। जंगल के सांप उसके हाथों और टांगों को चिपट जाते हैं, किन्तु इन्हे कंकण और आभूषण समझता हुआ इनकी परवाह नहीं करता। कैसा व्याल भूषण है।

मार्ग पर चलते २ एमर्सन ने पूछा "यहां के पुराने निवासियों के तीर कहां मिलते हैं। तो अपने स्वभाव के अनुसार झट जवाब देदिया, "जहां चाहो" और इतने में झुक कर उसी स्थान से अपेक्षित तीर उठा कर देदिया। दृश्यमान जगत् पर यह कितना महत्व का अधिकार है।

स्वयं एमर्सन जिनकी लेखनी ने अर्वाचीन जगत में नवीन चेतना फूंक दी, भगवद् गीता और उपनिषदों का न केवल अभ्यासी बल्की उनको बहुत बड़ा आचरण में लाने वाला था। इसने अपने लेखों में उपनिषद् और गीता के प्रमाण कई एक स्थानों पर दिये हैं। और उसके निजके मित्रों की जुबानी मालुम हुआ कि उसके विचारों पर विशेषतः गीता और उपनिषदों का प्रभाव था। महात्माथोरो अपने "वाल्डन" नामक पुस्तक में लिखता है, 'प्रातः काल में अपने अन्तः करण और बुद्धिको भगवद् गीता के पवित्र गंगा जलमें स्नान कराता हूं। यह वह सर्व श्रेष्ठ और सर्वव्यापी तत्वज्ञान है कि इसको लिखे हुये देवताओं को वर्षों के वर्ष बीत गए, किन्तु इसके बराबर की पुस्तक नहीं निकली। इसके समक्ष हमारा अर्वाचीन जगत् अपनी विद्याओं और कला कौशल और सभ्यता के साथ तुच्छ और क्षुद्र मालुम देता है। इसकी महत्ता हमारे विचार और कल्पना से इतनी दूर है, कि मुझे कई बार

ख़याल आता है कि शायद यह शास्त्र किसी और ही युगमें लिखागया होगा। एक और प्रसंग पर मिस्र के भव्य मीनारों का वर्णन करते हुए थोरो लिखता है कि, प्राचीन जगत के समस्त संस्मरणों में भगवद् गीता से श्रेष्ठ कोई संस्मरण नहीं हैं। यही भगवद् गीता और उपनिषदों की शिक्षा आचरण में आई हुई व्यावहारिक वेदान्त या नक़द धर्म हो जाती है। इसी को रंगों पन्नो में लाकर वे लोग उन्नति को प्राप्त हो रहे हैं। आपके यहां यह कीमति नोट मौजूद हैं, पर कागज के नोट से चाहे वह कितनी ही कीमती हो भूख नहीं जाती, प्यास नहीं बुझती, शरीर की ठंड दूर नहीं होती। इस हुंडी को भुना कर 'नक़द धर्म' में बदलना पड़ेगा। आज वे लोग इस नोट की कीमत दे सकेंगे अब वहां पर हुंडी खरी हो सकती है। करो खरी।

जब सीताजी अयोध्या से बनवास को सिधारी तो उनके पीछे नगर की शोभा दूर होगई शोक विलाप फैल गया। प्रजा व्याकुल होगई। राजा का शरीर छूट गया। रानियों को रोना पीटना पड़ गया। राज सिंहासन चौदह वर्ष तक मानो खाली रहा और जब सीता जी को समुद्र पार से लाने के लिये रामचन्द्र जी खड़े होगये तो पक्षी (गरुड़ और जाटायु) भी सहायता करने को तैय्यार हो गये। जंगल के पशु (बन्दर, रीछ इत्यादि) लड़ने मरने के लिये सेवा में उपस्थित होगए। कहते हैं कि अपनी छोटी सी शक्ति के अनुसार गिलहरियां भी मुंह में रेत के दाने भर कर पुल बांधने के लिये समुद्र में डालने लगी। वायु और जल भी अनुकूल बन गये। पत्थर भी सब समुद्र में डाले तो सीता के लिये अपने स्वभाव को भूल गये और डूबने के स्थान पर तैरने लगे।

कुनम सदसर फिदाए पाये सीता,

चे यकता सरिच दहता सर च सीता॥

अर्थात् मैं सौ सिर सीता जी के पैरों पर भेट कर दूंगा। चाहे एक शिर का शिर हो, चाहे दसका, चाहे तीसका।

सीता से अभिप्राय अध्यात्म रामयण में है ब्रह्म विद्या। हम कहेंगे "असली ब्रह्म विद्या" (नक़द धर्म) को तिलाञ्जलि देने से भारत वर्ष में सब प्रकार की आपत्ति आई। क्या २ विपत्ति नहीं आई? किस किस दुःख और रोगने हमें नहीं सताया? हाय! यह सीता समुद्र पार चली गई। व्यावहारिक ब्रह्म विद्या को समुद्र पार से लाने के लिये आज खड़े तो हो जाओ और देखो समस्त संसार की शक्तियां आपस में शर्तें बांधकर तुम्हारी सेवा व सहायता करने के लिये हाथ जोड़े खड़ी हैं। सबके सब देवता और मलायक देवदूत सिर झुकाये हाज़िर खड़े हैं। प्रकृति के नियम शपथ खा २ कर तुम्हारी सहायता को कटिबद्ध हो खड़े हैं। अपने ईश्वरत्व में जागो तो सही और फिर देखो, कि होता है या नहीं।

सारे जहां के अच्छा हिन्दोस्तां हमारा।
हम बुल बुलें हैं उसकी वह गोस्तां हमारा॥

(स्वामी रामतीर्थ)

शान्त

[रचयित्री श्रीमती ब्रजकुमारी 'प्रभाकर' आश्रम]

उन्नत शेखर शैल शिरोमणी, पै शिव को गिरिजा अवराधति ।
आसन बांध कुशासनासीन है, शासन गोगण लैमन बांधति ॥
शान्त अखंड अरूप समाधि सों, ब्रह्म में प्रीत दिवे रस माधति ॥
आतव शांत सवृष्टि अमग्न, प्रलय रत है "ब्रज" योगहिं साधति ॥

भजन

[संग्रहकर्ता-शङ्कर देव ब्रह्मचारी 'आश्रम']

१

श्याम मन मोह लिया कृष्ण मन मोह लिया ।
तेरी बंशरी पियारी ने । हां राधा हां ॥ टेक ॥
राधा तेरे प्रेम ते कृष्ण तेरे प्रेम ते ।
हां पाया जादू प्रेम पुजारी से हां राधा हां ॥१॥
मोर मुकुट की छबी है न्यारी प्रेम भरे तेरे नैन ।
मुरारी ! राधा जादू पा लिया प्रेम की प्यास ॥
मुरारी से हां राधा हां ॥ २ ॥
दधी भरी मैंनूं मटकी दिखावो ।
रस भरी श्याम मैंनूं बंशी सुनावो ॥
चलो सुनो बंशी श्याम सुनो बंशी प्रेम की प्यास ।
मुरारी से हां राधा हां ॥ ३ ॥

२

मैंने मोहन को सदा बंसी बजाते देखा ।
मैंने उस सांवले को गौवें चराते देखा ॥ टेक ॥
एक दफा देखा उसे माखन चुराते मैंने ।
एक दफा कौरवों से जंग छिड़ाते देखा ॥
महाभारत में उसे ज्ञान सुनाते देखा ।
मित्र अर्जुन का उसे रथ भी चलाते देखा ॥
चीर अबला के उसे, हमने बढ़ाते देखा ।
अपने भक्तों के लिये बन्धन में आते देखा ॥

३

ओं शब्दं शिव २ पं पं पं अमृत वर्षे है छम २ ॥टेक॥
ओं नूर का है भण्डार तारे त्रिसमें वे सुम्मार ।

राम रिहा प्रकाश में रम।
रिम झिम रिम झिम झिम झिम झिम॥
नूर है उसका कैसा आला बैरुल बेस क्षीर सागर वाली,
चमके है वो चम ३॥
छाई घटा है कैसी काली बैरिल मेघि क्षीर सागर वाल,
बर्षे है सोऽहं २ रिम झिम २ झिम॥

४

कोई प्रीत की रीत सिखादो हमें,
कोई मन का मीत सिखादो हमें।
कोई ऐसा गीत सुनादो हमें,
खिल जाये जिससे दिलकी कली॥
बन बासी मीत कहा जाने,
पर्देसी प्रीत कहा जाने।
हम ऐसे गीत कहा जाने,
खिल जांए जिससे दिलकी कली॥
यहां दिलकी कली तो कभी न खिली,
यह सब शहरों के धन्धे हैं,
यह दिलों हवस के फन्दे हैं।
हमतो सैलानी बन्दे हैं,
हम प्रीत की रीत कहा जानें॥
दिल जंगल ही में बहलता है,
यहां दुस्न पै इश्क मचलता है।
यहां प्रेमका सागर चलता है,
यहां प्रेम का सागर चलता है॥
हमें प्रीत की रीत बतादे कोई,
हमें ऐसा गीत सुनादे कोई।
खिल जाए जिससे दिलकी कली,
यहां दिलकी कली तो कभी न खिली॥

५

मैं योगी यश गाया री बाला॥ टेक॥
तेरे सुनके दर्शन कारन, मैं काशी तज धाया॥
परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम, सकल लोक जा माया॥
अलख निरंजन देखन कारन, सकल लोक फिर आया॥
धन्य तेरो भाग यशोदा रानी, जिन ऐसो सुत जाया॥
गुणी बड़े छोटे मत भूलो, अलख रूप धरि आया॥
जो भावे सो लिजिये रावल, करो आपनी दाया॥
देहो अशीस तेरे बालक को, अविचल बाढ़े काया॥
ना मैं लेहों पाट पटम्बर, ना मैं कंचन माया॥
मुख तेरो बालक को, यह मेरे गुरु ने बताया॥
कर जोरे विनवे नन्दरानी सुत योगिन को राया॥
मुख देखन नहीं देहों रावल, बालक जात डराया॥
जकी दृष्टि सकल जग ऊपर, सो क्यों जात डराया॥
तीन लोक का साहिब मेरा, तेरे भवन छिपाया॥
कृष्ण लाल को लाई यशोदा, कर अंचल मुख छाया॥
गोद पसार चरण रज बन्दि, अति आनन्द बढ़ाया॥
निरखि २ मुख पंकज लोचन, नैनन नीर बहाया॥
सूर श्याम परकम्मा करके, शृंगी नाद बजाया॥

६

मत गर्व करो मन धनका,
है जीवन दो दिनका॥ टेक॥
कौड़ी २ माया जोड़ी संग ना जाय तिनका॥
बड़े २ महाराज होगए पता नहीं है उनका॥
रावण से बलवीर ना रहे, हां २ यहीं रही है लंका॥
चाहो तो लो राम रुपिया उसमें नाहीं शंका॥
खर्चे से तो बढ़े काल भी करना कैसे शंका॥

REG DNo. L 2071

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।=)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ	
४.	वेदोपनिषद्		।=)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	=)।
६	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	=)॥
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,,	=)॥
८.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	,,	=)
९.	सत्य शब्द संग्रह	,,	॥=)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	=)॥
११.	शब्द सार संग्रह	,,	=)।
१२.	शब्दसंग्रह	,,	=)॥
१३.	सारसंग्रह	,,	)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	।=)
१५.	मनुस्मृति सार	,,	=)।
१६.	भक्ति चिन्तामणि	,,	।=)
१७.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१८.	भगवदंक	,,	॥)
१९.	गवांक	,,	१)
२०.	महात्मांक	,,	१)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।